श्री हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला २८४

श्रीराजशेखरविरचितं

प्रचण्डपाण्डवं नाटकम्

सविमर्श 'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

डॉ० श्रीहरिदत्तशास्त्री

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
२८४

श्रीजराशेखरविरचितं

प्रचण्डपाण्डवं नाटकम्

सविमर्श 'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

डॉ० श्रीहरिदत्तशास्त्री

एम० ए०, पी०-एच० डी०

उपकुलपतिः

गुरुकुल-महाविद्यालयः, ज्वालापुर (सहारनपुर)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६९

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२६

मूल्य : २-००

Gopal Mandir Lane,

P. O. Chowkhamba, Post Box 8,

Varanasi-1 (India)

1969

Phone : 3145

प्रधान शाखा

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१

फोन : ३०७६

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

284

PRACAṆḌAPĀṆḌAVA NĀṬAKA

OF

ŚRĪ RĀJAŚEKHARA

Edited with

The 'Prakāśā' Hindi Commentary and Critical Notes

By

Dr. ŚRĪ HARIDATTA ŚĀSTRĪ, M. A., Ph. D.
Vice-Chancellor, Gurukula Mahavidyalaya,
Jwalapur (Saharanpur)
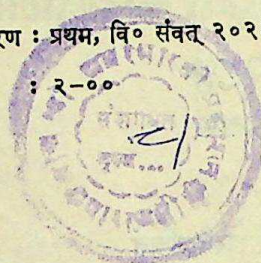
THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1969

First Edition
1969
Price Rs. 2-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers & Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 3076

प्रस्तावना

मङ्गलम्

सन्ध्यासलिलाञ्जलिमपि, कङ्कणमणिपीतमविजानन् ।
गौरीमुखार्पितमना विजयाहसितः शिवो जयति ॥

राजशेखरप्रशस्तिः

पातुं श्रोत्ररसायनं, रचयितुं वाचः सतां सम्मताः,
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रस-स्रोतसः ।
भोक्तुं स्वादु फलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकम्,
तद् भ्रातः ! शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः ॥

(प्रस्तावना—विद्धशालभञ्जिका)

समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः ।
यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः ॥

(तिलकमञ्जरी ३३)

यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशंसितः सूरिसमाजवर्यैः ।
नृत्यत्युदारं भणिते रसस्था नटीव यस्योढरसा पदश्रीः ॥

(कायस्थ सोड्ढल कविकृत उदयसुन्दरीकथा चम्पू)

उक्त वाक्यों से सिद्ध है कि राजशेखर महाकवि से भी बड़ा कविराज था, (देखिए काव्यमीमांसा[1]) । राजशेखर स्वयं को एक ज्योतिर्विद् विद्वान के कथनानुसार परम्परया वाल्मीकि रूप तथा भवभूति का अग्रिम जन्म में राजशेखर होना मानता है, या यूँ कहिए इन सब कवियों के गुण उसमें विद्यमान थे । वह लिखता है कि :—

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥

---

१. यस्तु तत्र तत्र भाषाविशेषेषु तेषु तेषु प्रबन्धेषु तस्मिंस्तस्मिंश्च रसे स्वतन्त्रः स कविराजः । ते यदि जगत्यपि कतिपये । (काव्यमीमांसा अध्याय ६)

निःसन्देह विक्रम के ९म शतक से लेकर ११ वीं शताब्दी तक का समय संस्कृतसाहित्य की उन्नति के लिए स्वर्णयुग था। उस समय में शङ्कराचार्य, कुमारिल, उदयनाचार्य, मण्डनमिश्र, सायणाचार्य जैसे प्रकाण्ड मनीषियों ने जन्म लिया। बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति, तथा जैन विद्वान् माल्य-कीर्ति भी १०म शतक के अन्त में प्रादुर्भूत हुए। मम्मटाचार्य, भोजराज, आनन्दवर्धन, वामन और दण्डी भी इन्हीं शतकों के अलङ्कार बने।

काश्मीर देश में महाकाव्यों की रचना हुई जिनमें हरविजय, श्रीकण्ठ-चरित आदि मुख्य हैं। महोदय या कन्नौज में मालती-माधव, उत्तररामचरित बालरामायण जैसे नाटकों या दृश्यकाव्यों का प्रणयन हुआ।

राजशेखर का समय

राजशेखर की छः रचनाएँ हैं—जैसा कि उसने बालरामायण नाटक में लिखा है किः—

ब्रूते यः कोऽपि दोषं महदिति सुमतिर्बालरामायणेऽस्मिन्,
प्रष्टव्योऽसौ पटीयानिह भणितिगुणो विद्यते वा नवेति।
यद्यस्ति स्वस्ति तुभ्यं भव पठनरुचिर्विद्धि नः षट् प्रबन्धान्,
नैवं चेद्दीर्घमास्तां नटवटुवदने जर्जरा काव्यकन्या॥

(बालरामायण १–१२)

चार नाटकों में उन्होंने स्वयं को राजा महेन्द्रपाल का गुरु निर्दिष्ट किया है। तथा हि—

किमपरमपरैः परोपकार–व्यसन–निधेर्गणितैर्गुणैरमुष्य।
रघुकुल-तिलको महेन्द्रपालः सकलकला-निलयः स यस्य शिष्यः॥

(विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अंक)

बालभारत नाटक में महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल को अपना अभिभावक बतलाया है, महेन्द्रपाल का दूसरा नाम निर्भयराज है, कर्पूरमञ्जरी सट्टक में राजशेखर ने अपने आप को निर्भयराज का गुरु लिखा है।

बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः।
इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढः॥

(कर्पूरमञ्जरी - १–९)

राजा महेन्द्रपाल गुर्जर प्रतिहार वंश का राजा था, इसके पिता का नाम मिहिरभोज था। इसकी राजधानी गाधिपुर थी, गाधिपुर को कुछ लोग आजकल का गाज़ीपुर मानते हैं। यहीं पर विश्वामित्र के पिता 'गाधि' निवास करते थे, किन्तु अन्य विद्वान् कन्नौज को ही 'गाधिपुर' बताते हैं, कन्नौज का दूसरा नाम महोदय है और इसके आस पास के देशों का नाम 'अन्तर्वेदी' है। यही देश मध्यदेश के नाम से विख्यात था, जैसा कि मनु ने लिखा है—

हिमवद्-विन्ध्ययोर्मध्यं यत् प्राग्-विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः स कीर्तितः॥

इस श्लोक में आए 'विनशन' शब्द का अर्थ संदिग्ध है, कुछ लोग इसका अर्थ गया के पास बहने वाली 'कर्मनाशा' नदी कहते हैं, अन्य विद्वान् 'विनशन' शब्द का अर्थ सरस्वती नदी कहते हैं जो कुरुक्षेत्र के पास बहती थी अब लुप्त है। यही स्थान थानेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है जो सम्राट् हर्षवर्धन की राजधानी थी जिसका वर्णन महाकवि बाण ने हर्षचरित में किया है।

इस प्रकार अम्बाला से लेकर सहारनपुर, कुरुक्षेत्र, देहली, अलीगढ़, एटा, इटावा, कन्नौज, कानपुर, उन्नाव आदि देश या गया तक का देश मध्यदेश कहलाता था, वात्स्यायन के कामसूत्र के टीकाकार जयमङ्गल ने जयमङ्गला व्याख्या में यही मध्यदेश माना है, (देखिए कामसूत्र २-५-२१)। वर्तमान मथुरा और आगरा का प्रदेश मध्यदेश का ही हिस्सा है। कविराज राजशेखर का अन्तिम जीवन इसी देश में बीता है। वे अनेक देशों में भ्रमण करते फिरे किन्तु कहीं पर भी किसी राजा के यहाँ स्थिर आश्रय नहीं मिला, जैसा कि निम्नलिखित उक्ति से सिद्ध है :—

कार्णाटी-दशनाङ्कितः शित-महाराष्ट्री-कटाक्ष-क्षतः,
प्रौढान्ध्री-स्तन-पीडितः प्रणयिनी-भ्रू-भङ्ग-वित्रासितः।
लाटी-बाहु-विचेष्टितश्च, मलय-स्त्री-तर्जनी-तर्जितः,
सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति॥
(औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र कवि)

यही विदर्भ देश भवभूति का भी जन्मस्थान है जो आजकल बरार के

नाम से विख्यात है और हैदराबाद तक फैला हुआ है। तब बरार पर कुन्तल देश तथा कर्नाटक के राजाओं का राज्य था, आज की कांग्रेस सरकार ने हैदराबाद को आंध्र प्रदेश में डाल दिया है यह दूसरी बात है। इसी के समीप वत्सगुल्म नाम का एक देश था जो नर्मदा के उद्गमस्थल अमरकण्टक के पास पर्वत के निकट बताया जाता है (महाभारत, वनपर्व, अध्याय ८३–९)। राजा नल की रानी दमयन्ती भी इसी देश की थी। कुछ भी हो राजशेखर विदर्भ देश के महाराष्ट्री ब्राह्मण थे, इनका वंश यायावर था, अतएव ये यायावरी कहलाते थे। महेन्द्रपाल का समय ९४७ वि० से लेकर ९६५ विक्रमाब्द तक है, अर्थात ८९० ई० से लेकर ९०८ ई० तक।

महीपालदेव का समय ९१० ई० से लेकर ९४० ई० तक है। अतः राजशेखर का समय ९३७ ई० से ९७० विक्रमाब्द तक या ८८० ई० से ९२० ई० माना जा सकता है। यही समय महाराजा गायकवाड, बड़ौदा से प्रकाशित ओरियण्टल सीरीज ने निर्धारित किया है।

साहित्यकारों की दृष्टि से राजशेखर का समय

(क) चण्डकौशिक नामक नाटक आर्य क्षेमीश्वर कवि ने बताया है जिसका अनुवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सत्यहरिश्चन्द्र' नामक नाटक के रूप में किया है। इसकी प्रस्तावना में कर्णाटक देश के विजय की चर्चा है जो कि घटना ९१५–९१७ ई० की है, यह आर्य क्षेमीश्वर राजशेखर के समकालीन थे।

(ख) काव्यमीमांसा में राजशेखर ने काश्मीर के कवि उद्भट का नाम उद्धृत किया है, जो कि विक्रमीय वर्ष ८३६–८७० या ई० ७७९–८१३ तक जयापीड की पण्डितसभा के सभापति थे।

> विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
> भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः॥
>
> (राजतरङ्गिणी, ४–४९५)

(ग) ध्वन्यालोक के निर्माता आनन्दवर्धन का भी काव्य-मीमांसा में जिक्र है जो कि वि० ९१४–९४१ (ई० ८५७–८८४) में राजा अवन्तिवर्मा के सभापति थे, अतः राजशेखर इसके कुछ समय पश्चात् ही रहे होंगे यह निश्चित है।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥

(राजतरङ्गिणी, ५ तरङ्ग पद्य ३४९)

(घ) सोमदेवसूरिकृत (ई० ९५९) यशस्तिलकचम्पू में भी राजशेखर का उल्लेख है, अतः वे इससे पूर्वतनकालिक हैं ।

वंश परिचय

बाल-रामायण नाटक की प्रस्तावना में राजशेखर ने अपने को अकालजलद नामक व्यक्ति का प्र-प्रपौत्र, दर्दुक का तथा शीलवती का पुत्र लिखा है । इनके पिता किसी राजा के मन्त्री भी थे । तथाहि :—

सूक्तमिदं तेनैव मन्त्रिसुतेन—

स मूर्तौ यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः,
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा ।
न चान्ये गण्यन्ते तरल-कविराजप्रभृतयो-
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले ॥

(बालरामायण १माङ्क)

विद्धशालभञ्जिका में राजशेखर अकालजलद के प्रणप्ता लिखे हैं—तथा वे इस प्रकार प्रदौहित्र भी हो सकते हैं । वल्लभदेव की सुभाषितावली में 'अकाल जलद' का यह पद्य मिलता है—जो उनकी इस नाम से प्रसिद्धि में कारण माना जा सकता है, शार्ङ्गधर-पद्धति में भी यह पद्य संगृहीत है । इस पद्य में ग्रीष्म ऋतु का भयङ्कर सन्ताप वर्णित है, पाठकों के मनोरञ्जनार्थ वह पद्य इस प्रकार है—

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः,
पाठीनैः पृथुपङ्ककूटलुठितैर्यस्मिन् मुहुर्मूर्च्छितम् ।
तस्मिन् शुष्कसर'स्यकालजलदेना'गत्य तच्चेष्टितम्,
येनाकण्ठनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते ॥

सम्भव है—इस पद्य के कारण कवि की 'अकालजलद' के नाम से प्रसिद्धि हो गयी हो और यह उनका उपनाम हो । ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे । महाराष्ट्र

देश—कुन्तल (कर्णाटक), विदर्भ (बरार), लाट (गुजरात और पूर्व खानदेश) तथा चेदि (जबलपुर व त्रिपुरी के उत्तर तथा मध्यदेश) इन चारों को मिला कर कहलाता था, इनमें से राजशेखर लाट देश के थे ।

राजशेखर क्षत्रिय थे या ब्राह्मण

यह विषय विचारणीय है—निःसन्देह वे 'यायावर' कुलोत्पन्न थे । किन्तु विचारणीय यह है कि 'यायावर' शब्द का क्या अर्थ है तथा क्या क्षत्रिय भी 'यायावर' हो सकते हैं ? यायावर पद की व्याख्या इस प्रकार है—

"यायावराः यजन्तो याजयन्तोऽधीयानाः अध्यापयन्तो ददतः प्रतिगृह्णन्तश्च ये" ।

तथा 'विद्धशालभञ्जिका' की टीका में नारायण दीक्षित ने 'यायावर' शब्द का अर्थ देवलस्मृति के अनुसार एक प्रकार का गृहस्थ लिखा है । तथाहि—

"द्विविधो हि गृहस्थो यायावरः शालीनश्च ।
शालीनवृत्तयो यायावरा घोरसन्न्यासिकाश्चेति ॥

श्रीमद्भागवत में भी लिखा है कि :—

वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ।
विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥
(भागवत ७।११।१६)

इससे सिद्ध है कि 'यायावर' वृत्ति वाले ब्राह्मण होते हैं । यहाँ यह शङ्का उठती है कि उनकी पत्नी अवन्तिसुन्दरी क्षत्रिय कुलोत्पन्न थी, जैसा कि कर्पूरमञ्जरी (सट्टक) में उन्होंने लिखा है कि—

चउहाणकुलमालिआ राजसेहरकइन्दगेहिणी ।
भत्तुणो किदिमवन्तिसुन्दरी सा पउज्जइदुमेदमिच्छदि ॥

अतः उनके क्षत्रिय होने की संभावना की जा सकती है, किन्तु यह कथन उनके ब्राह्मणत्व का विघातक नहीं, क्योंकि मनु ने स्पष्ट ही ब्राह्मण को चारों वर्णों की कन्याओं से विवाह कर सकता है यह अधिकार—

'ब्राह्मणश्चतुर्णां वर्णानाम्'

यह कहकर दिया है, तथा वे निर्भय राजोपनामक महेन्द्रपाल के उपाध्याय या गुरु थे, जैसा कि पहले लिख चुके हैं, प्राचीन परम्परा के अनुसार क्षत्रियों का गुरु ब्राह्मण ही होता आया है, क्षत्रिय नहीं, रही अवन्तिसुन्दरी से विवाह की बात वह तो—

'विनाऽवन्तीर्न निपुणाः सुदृशो रतकर्मणि ।'

(बालरामायण १–१०)

इस सिद्धान्त के अनुसार वासना-तृप्ति के लिए या अन्य गुणों को देखकर राजशेखर ने विवाह किया था यह कहा जा सकता है। हो सकता है कि यायावर राजशेखर का तबतक विवाह ही न हुआ हो या यह दूसरा विवाह हो पहली के दिवंगत हो जाने के बाद। पण्डितराज जगन्नाथ ने भी यवनी लवङ्गी से विवाह कर लिया था तथा वे तैलङ्ग ब्राह्मण ही रहे। अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि राजशेखर उत्तम कोटि के ब्राह्मण थे, क्षत्रिय नहीं।

राजशेखर कृत दृश्य व श्रव्य काव्य

राजशेखर ने १–बालरामायण (नाटक), २–विद्धशालभञ्जिका (नाटिका), ३–कर्पूरमञ्जरी (सट्टक), ४–प्रचण्डपाण्डव (बालभारत) नाटक और ५–काव्य मीमांसा नामक जो ५ रचनाएँ की हैं वे उपलब्ध हैं। काव्यमीमांसा का 'कविरहस्यम्' नामक एक ही प्रकरण उपलब्ध है, संभव है इस काव्य-मीमांसा में और भी 'अलंकाररहस्यम्', 'रसरहस्यम्', 'वृत्तिरहस्यम्', 'गुण-रहस्यम्' नाम के और भी प्रकरण हों। इस प्रकार यह काव्यमीमांसा अपूर्ण ही रह गयी हो यह अनुमान होता है—क्योंकि 'काव्यमीमांसा' से पूर्व की कृति प्रस्तुत 'प्रचण्डपाण्डव' नाटक है। जब यही अपूर्ण रह गया, या पूर्ण उपलब्ध नहीं होता तो 'काव्य-मीमांसा' अपूर्ण रह गई या पूर्ण उपलब्ध नहीं होती, यह अनुमान लगाना कुछ कठिन नहीं। इसका संकेत काव्य-मीमांसा के २ व ३ अध्याय में मिलता है। उनकी रचना 'भुवनकोश' भी थी, यह बालरामायण के पूर्वोद्धृत १ म अङ्क के १२ वें पद्य से पता चलता है, वह मिलता ही नहीं।

ग्रन्थान्तरों में उद्धृत कतिपय पद्यों से यह पता चलता है कि उनका एक 'हरविलास' नामक श्रव्यकाव्य था जो अब प्राप्त नहीं होता। जल्हण की 'सूक्तिमुक्तावली' तथा 'हारावली' नामक रचनाओं में राजशेखर के कवि-प्रशस्तिपरक पद्य मिलते हैं जिससे सरलतया यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राजशेखर ने 'कविप्रशस्ति' या 'कविविमर्श' नामक एक रचना की थी। इस प्रकार यह सारांश निकला कि 'भुवनकोश', 'हरविलास', 'कविप्रशस्ति' नामक ग्रन्थ नहीं मिलते। इन्हें मिलाकर राजशेखर की पूर्ण या अपूर्ण कुल ८ आठ रचनाएँ होतीं तथा मिलने वाली रचनाओं में प्रचण्ड पाण्डव (बालभारत) और काव्य-मीमांसा अपूर्ण हैं। कर्पूरमञ्जरी सर्वप्रथम तथा काव्य-मीमांसा उपलब्ध ग्रन्थों में अन्तिम है। 'हरविलास' महाकाव्य की चर्चा यद्यपि राजशेखर ने स्वयं नहीं की, किन्तु जैन विद्वान् हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में की है। तथाहि—

आशीर्यथा राजशेखरस्य हरविलासे—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म श्रुतीनां मुखमक्षरम्।
प्रसीदतु सतां स्वान्तेष्वेकं त्रिपुरुषीमयम्॥

इसी प्रकार उणादि सूत्रों पर वृत्ति लिखने वाले उज्वलदत्त ने भी उनका आधा श्लोक हरविलास काव्य से उद्धृत किया है—

'दशाननक्षितखुरप्रखण्डितः, ।
क्वचिद् गतार्धो हरदीधितिर्यथा॥' (हरविलास २–२८)

राजशेखर कितने हुए हैं ?

१—एक राजशेखर—केरल देशका राजा था जो शङ्कराचार्य के समकालीन था—जिसका उल्लेख शङ्करदिग्विजय में सायणाचार्य ने 'नृपतिः कश्चन राजशेखराख्यः' इन शब्दों में किया है।

२—एक राजशेखर प्रबन्धकोष या चतुर्विंशति प्रबन्ध नामक ग्रन्थ का निर्माता जैन विद्वान् था।

३—तीसरा राजशेखर चंगजा शेरी के समीप तलमन-इल्लम् नामक ग्राम

से प्राप्त ताम्रपत्र में वर्णित है, जिसे म० म० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने अप्रामाणिक माना है।

४—इस प्रचण्डपाण्डव (बालभारत) नाटक का प्रणेता राजशेखर उक्त तीनों से भिन्न है, जिसके सम्बन्धी या परिचित तरल, सुरानन्द, कादम्बरीराम, कविराज, प्रभुदेवी, सुभद्रा आदि हैं, जो प्राकृत भाषा में कर्पूर-मञ्जरी का रचयिता, एवं अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत व शौरसेनी प्राकृत का प्रकाण्ड विद्वान् है और जो कर्पूरमञ्जरी में संस्कृत से प्राकृत को कोमल बतलाता है, (लेखक इससे सहमत नहीं 'भिन्नरुचिर्हि लोकः)।' तथा जिसने—

'पुरुषवत् स्त्रियोऽपि कवीभवेयुः, संस्कारो हि आत्मनि समवैति, न स्त्रैणं पौरुषं वा विभागमपेक्षते।' इत्यादि—

(का० मी० १० अध्याय)

कह कर स्त्रियों के कवि होने पर हर्ष प्रकट किया है। तथा आत्मा के एक होने से ही जातिगत एवं धर्मगत भेदभाव को तिलाञ्जलि देकर वाल्मीकि जाति (भङ्गी) के कवि दिवाकर का भी सम्मान किया और कुम्भकार जाति के कवि द्रोण की प्रशंसा की है। उक्त दिवाकर कवि राजा हर्षवर्धन की सभा का सभास्तार था। देखिये जल्हण कृत सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर के पद्य—

के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन गुम्फिताः।
निन्दन्ति निजकान्तानां मौग्ध्य-मधुरा गिरः॥
शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते।
शीला भट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥
पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे खलु सुभद्रया।
कवीनां च वचोवृत्तिचातुर्येण सुभद्रया॥
सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानां च विलासभूः।
प्रभुदेवी कविर्लाटी गताऽपि हृदि तिष्ठति॥
अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाण-मयूरयोः॥

सरस्वती-पवित्राणां जातिस्तत्र न देहिनाम् ।
व्यासस्पर्द्धी कुलालोऽभूद् यद् द्रोणो भारते कविः ॥
—जल्हण : सूक्तिमुक्तावली—राजशेखर

शैली

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में सूत्रशैली का अनुसरण किया है, किन्तु उसके नाटकों में प्रसाद और ओज दोनों गुण पाये जाते हैं। वैदर्भी रीति का प्राधान्य है, लालित्य एवं अनुप्रास का बाहुल्य; संस्कृत में प्राञ्जलता, प्रवाह, प्रौढि और माधुर्य है, सचमुच ही वे नाटकों में भवभूति के पक्के अनुयायी प्रतीत होते हैं ।

संक्षिप्त कथा

प्रथम अङ्क

प्रथम अङ्क में नान्दी प्रवेश के बाद व्यास तथा वाल्मीकि कवि का अद्भुत संवाद है, जिसके द्वारा कवि दोनों महाकाव्यों के गम्भीर अध्ययन की झलक प्रकट कर रहा है। यही उसने उन महाकवियों के आराधन का एक नवीन प्रकार निकाला है। फिर राधावेध का वर्णन है, ब्राह्मण वेषधारी अर्जुन आता है, लोगों में हल्ला मचता है कि एक ब्राह्मण द्रौपदी से कैसे विवाह कर सकता है। प्रत्येक राजा का बड़ा सुन्दर वर्णन है। इस स्वयंवर में पाँचों पाण्डव, द्रोणाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, भीष्मपितामह, दुःशासन, शकुनि, जयद्रथ, बलराम, श्रीकृष्ण, सात्यकि, शिशुपाल, शकाधिप, रमठेश्वर पाण्ड्य, विप्र आदि का स्वयंवर में वर्णन है; तथा स्वयंवर के बाद अङ्क समाप्त हो जाता है ।

द्वितीय अङ्क

द्वितीय अङ्क में विष्कम्भक में विदुर द्यूतनिन्दा करते हैं, पर द्यूत होता है, तथा प्रत्येक वस्तु को दाँव पर लगाने के बाद युधिष्ठिर द्रौपदी तक को हार जाते हैं। उन्हें बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास होता है। शकुनि की धूर्तता जीतती है, धर्म हारता है, तथा पाण्डवों का वन के लिए प्रयाण हो जाता है ।

राजशेखर निर्दिष्ट प्राचीन स्थानों के आधुनिक नाम

१	अङ्ग	: भागलपुर से मुंगेर तक का भू-भाग।
२	अन्तर्वेदी	: थानेश्वर से प्रयाग तक का देश।
३	अर्बुद	: अरावली पर्वतमाला।
४	अश्मक	: गोदावरी तथा नर्मदा के मध्य का भाग।
५	आंध्र	: गोदावरी और कृष्णा नदी के मध्य का भाग। इसकी राजधानी 'प्रतिष्ठानपुर' या पैठन थी।
६	आनर्त	: सौराष्ट्र या गुजरात, जूनागढ़, वड़नगर, काठियावाड़, द्वारका, प्रभासतीर्थ इसी में हैं।
७	उत्तरकोशल	: अयोध्या, लखनऊ, श्रावस्ती (शरावती) देश। दक्षिण कोशल विदर्भ या बरार है, जबलपुर महाकोशल में आता है।
८	उत्तर कुरु	: तिब्बत व तुर्किस्तान।
९	कपिशा	: कसिया (उत्कल, उड़ीसा) सिंहभूम जिले का प्रदेश।
१०	कर्णाट	: मैसूर (महिषपुर), कुर्ग आदि देश, राजधानी श्रीरङ्ग-पत्तन थी।
११	कलिङ्ग	: राजमहेन्द्री के आसपास का देश, अर्थात उड़ीसा से गोदावरी के मुहाने तक का देश। महाभारत में इसे 'दन्तपुर' लिखा है
१२	कामरूप	: आसाम या असम, यह एक पर्वत है जिसे नीलगिरि भी कहते हैं। इसे दक्षिण चीन भी कहते हैं, करतोया नदी यहीं बहती है।
१३	कम्बोज	: काबुल अफगानिस्तान, हिन्दुकुश का देश।
१४	कुन्तल	: इसका शासक सातवाहन था, वर्तमान कर्णाटक व कोंकण देश।
१५	कुलूत	: काँगड़ा जिला, वर्तमान कुलू। राजधानी स्थानपुर (सुलतानपुर) जालन्धर से ११७ मील दूर।

१६ केरल : मलावार, कोचीन, ट्रावनकोर का प्रदेश ।
१७ कोंकण : परशुराम क्षेत्र ।
१८ क्रथकैशिक : विदर्भ देश ।
१९ दशपुर : मालवा, मन्दसौर ।
२० दसेरक : मरुस्थल, साल्वदेश ।
२१ पयोष्णी : तापी की सहायक नदी, पूर्णा नदी ।
२२ पल्हव : काञ्ची प्रदेश ।
२३ पाण्ड्य : मदुरा और तिन्नीवेली जिले मद्रास के ।
२४ पुण्ड्र : पुण्ड्रवर्धन, बङ्गाल का मालदा जिला ।
२५ पृथूदक : पहेवा (कुरुक्षेत्र के पास) ।
२६ बर्बर : बिलोचिस्तान व सिन्धु नदी के पास मम्बूरा नामक स्थान ।
२७ भृगुकच्छ : भडौंच (गुजरात) ।
२८ मुरल : मुरला नदी के तट पर बसा देश, मिरज नाम से प्रसिद्ध है ।
२९ मेकल : अमरकण्टक पर्वत ।
३० लम्पाक : लमघम, काबुल नदी के तट पर ।
३१ लाट : अहमदाबाद व खेड़ा जिला ।
३२ लौहित्य : ब्रह्मपुत्रा नदी ।
३३ वितस्ता : झेलम नदी ।
३४ विदिशा : भेलसा ।
३५ शकदेश : स्यालकोट ।
३६ सुम्ह : ताम्रलिप्ति या तामलुक, बङ्गाल की खाड़ी का देश ।

काव्य सौष्ठव

राजशेखर स्वभाव वर्णन तथा कल्पना में अद्वितीय हैं । जब सूर्य भगवान् अस्ताचल को जाने लगे तो समुद्र के मगरों ने समझा कि आकाश से लाल लाल मांस का पिण्ड समुद्र में गिर रहा है अतः सब उस ओर देखने व गिरने की प्रतीक्षा करने लगे—

अयमहिमरुचिर्भजन् प्रतीचीम् ,
कुपितवलीमुखतुण्डताम्रबिम्बः ।
जलनिधिमकरैरुदीक्ष्यते द्राग् ,
नवरुधिरारुणमांसपिण्डलोभात् ॥ १–२१ ॥

इसमें उपमा भी ग्राम्य है । युधिष्ठिर और दुर्योधन नाम के दो पेड़ हैं जो एक दूसरे से विपरीत हैं—एक धर्म वृक्ष है तो दूसरा मन्यु वृक्ष । देखिए—

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः,
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनस्तस्य शाखाः ।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे,
मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥ २–९४ ॥
दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः,
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः ।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे,
मूलं राजा धृतराष्ट्रो मनीषी ॥ २–९५ ॥

घोड़ों की टाप से टकार का उच्चारण व लेखन सीखा जाता है क्योंकि टाप की शकल यदि टकार का गले का डण्डा हटा दिया जाय तो टकार जैसी होती है ।

महीधरदरीमुखे सनिनदं पतद्भिः खुरैः,
लिखन्ति च पठन्ति च स्फुटतरं टकारानिव ।
विरोचनहयावलीकुलभुवां स तेषामयम् ,
पणः पवनरंहसां मम तुरङ्गमाणां गणः ॥ २–११० ॥

जब कन्याएँ यौवन की सीढ़ी पर पैर रखती हैं तो उन्हें बार-बार शीशे में मुँह देखने की इच्छा होती है । प्रौढ़ स्त्रियों के समान आचरण करने लगती हैं, इत्यादि यही द्रौपदी की दशा है—

शारीद्यूतकलाकुतूहलि मनश्छेकोक्तिशिक्षारतिः,
नित्यं दर्पणपाणिना सहचरीवर्गेण चाचार्यकम् ।
प्रौढस्त्रीचरितानुवृत्तिषु रसो बाल्येऽपि लज्जा मनाक् ,
स्तोकारोहिणि यौवने मृगदृशः कोऽप्येष रम्यः क्रमः ॥१–२९ ॥

जूएबाजों को भी राजशेखर ने अच्छी नसीहत दी है कि जूआ खेलना, लक्ष्मी को घर से निकालना, कपट करना, सत्य भाषण न करना, बेशर्म होना, अयश कमाना, आपत्तियों को निमन्त्रण देना, कुटिल चालबाजियाँ सीखना हो है—अतः इससे दूर ही बचो—

> श्रीनिर्वासनडिण्डिमकणरवः सद्म स्थिरं छद्मनाम्,
> सत्योत्सारणघोषणा तत इतो लज्जानिवापाञ्जलिः।
> द्वारं ह्यार्ययशःपराभवपदं गोष्ठी गरिष्ठापदाम्,
> द्यूतं दुर्नयवारिधिर्निपततां कस्तत्र हस्तग्रहः ॥२-९३॥

इस प्रकार राजशेखर की इस कृति में तथा अन्य रचनाओं में शिक्षाप्रद सूक्तियों की भरमार है।

नियम भङ्ग तथा अप्रसिद्ध शब्द प्रयोग

महाकवि व्याकरणों का बन्धन स्वीकार करने में अपना अपमान समझते हैं—फिर कविराजों की तो बात ही क्या। कविराज राजशेखर न प्राकृत व्याकरणों का नियम मानते हैं न पाणिनि व्याकरण का। पद्य १२८ अङ्क २ में द्वितीय चरण में 'क' के स्थान में 'ल' का प्रयोग अर्थात् 'मुक्तक' को 'मुक्तल' प्राकृत बनाना इनका ही काम है। ऐसे ही अन्य भी प्रयोग हैं।

> अप्रेक्षित्वा विलोलां द्रुपददुहितरं विद्धराधाशरव्यम्।
> बाणं कोदण्डदण्डे विदधदयमितो वर्तते विप्रवीरः ॥ १-८४ ॥

इस उत्तरार्ध में 'अप्रेक्षित्वा' यह प्रयोग व्याकरण नियमानुसार कैसे शुद्ध है यह कविराज ही जानें। इन्होंने अनेक अप्रसिद्ध शब्दों का भी प्रयोग किया है—जैसे अर्जुन के लिए राधावेधी, नंगे के लिए कोटवी, धनुष के लिए द्रुण, एवं ध्याम, डिम्ब आदि। इसमें भी सन्देह नहीं कि कवि को ये शब्द स्वयं हाथ जोड़ कर आ गए हैं। पद्य २-१२४ में **'मम पाण्डुपुत्रस्य ज्येष्ठत्वात्'** यह अन्वय है—यहाँ 'पाण्डुपुत्रस्य' की जगह 'पाण्डुपुत्रात्' यह होना चाहिए। इत्यादि।

मुद्रण में यत्न करने पर भी कहीं-कहीं त्रुटि रह गई है जैसे पद्य १–७८ के आदि में 'आकर्णाञ्चित' चाहिये। १–६३ में 'बन्धते' की जगह 'वन्द्यते' चाहिये। पृ० ५५ की टिप्पणी में 'मध्यभाग' शब्द के आगे '।' ऐसा पूर्ण विराम चाहिये। तथापि यह नाटक शुद्ध ही छपा है। इस अलभ्य या दुर्लभ अपूर्ण नाटक के प्रकाशन के लिए मैं चौखम्बा संस्थान के सञ्चालकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, तथा जगदीश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि उनको यह सरस्वती सेवा की अभिरुचि उत्तरोत्तर बढ़ती रहे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥
अत्रानुक्तं दुरुक्तं किमपि यदि भवेत्तद्धि सूक्तं कुर्वीरन्,
संख्यावन्तो महान्तः, यदुपकृतिविधौ शीलमेषामतन्त्रम्।
आलोकं लोकहेतोर्विदधति निविडध्वान्तमुद्वासयन्तः,
प्रालेयांशु-प्रदीप-द्युमणि-मणिगणास्तत्र को हेतुरास्ते ॥ इति ॥

सुग्रम् (आगरा)
होलिकादहनदिनम्
३–३–६९

विदुषामाश्रवः

हरिदत्तशास्त्री

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

सूत्रधार : नान्दी पाठक
व्यास : विष्कम्भक के प्रयोक्ता
वाल्मीकि : " "
युधिष्ठिर : प्रधान नायक
भीमसेन : नायक का अनुज
अर्जुन : " "
नकुल : " "
सहदेव : " "
धृष्टद्युम्न : प्रधान नायिका का सहोदर
बन्दी : प्रधान नायिका का सेवक
द्रोण : स्वयंवर के दर्शक
विदुर : विष्कम्भ के प्रयोक्ता
पुरुष : " "
शकुनि : प्रतिनायक के मामा
दुर्योधन : प्रतिनायक

स्त्री-पात्र

दुःशासन : प्रतिनायक का अनुज
विकर्ण : " "
द्रौपदी : प्रधान नायिका
सखी : प्रधान नायिका की सखी
सुनन्दा : प्रधान नायक की सेविका
सुरेखा : प्रतिनायक की सेविका

श्रीराजशेखरविरचितं

प्रचण्डपाण्डवं नाटकम्

सविमर्श 'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

नमः शिवाय संसारसरोजस्य रजस्विनः ।
विकासनैकसूर्याय सङ्कोचसकलेन्दवे ॥ १ ॥

नमो निसर्गनिर्विघ्नप्रसादामृतसिन्धवे ।
संसारमरुसन्तापतापितापन्न बन्धवे ॥
उपहरणं विभवानां संहरणं सकलदुरितानाम् ।
उद्धरणं संसाराच्चरणं वः श्रेयसेऽस्तु विश्वपतेः ॥

(प्रचण्डपाण्डव नामक दुष्प्राप्य इस अपूर्ण नाटक के निर्माता महाकवि राजशेखर हैं, इस नाटक के अभी तक केवल दो अङ्क उपलब्ध हुए हैं ।) राजशेखर प्रारम्भ में इस प्रकार मङ्गलाचरण करते हैं—

नम इति—संसाररूपी (परागपूर्ण) कमल को विकसित करने वाले सूर्य के सदृश तथा प्रलयकाल में संसार-कमल के सङ्कोच (संहार) करने में पूर्ण चन्द्रमा के सदृश (विरुद्ध स्वभाव वाले) शिव जी को प्रणाम हो ॥ १ ॥

विमर्श—भगवान् शिव के संसारनाशक स्वरूप से सब परिचित हैं पर संसारोत्पादक स्वरूप से बहुत कम परिचित हैं। यहाँ महाकवि राजशेखर ने एक ही चित्तत्वभूत शिव को संसार का नाशक तथा उत्पादक बतलाया है, जैसा कि महाकवि बाण ने कादम्बरी के मङ्गलाचरण-पद्य में भी लिखा है कि—

ये सीमन्तितभस्मगात्ररजसो ये कुम्भकद्वेषिणो,
ये लीढा श्रवणाश्रयेण फणिना ये चन्द्रशैत्यद्रुहः ।
ते रुष्यद्गिरिजाविभक्तवपुषः चित्तव्यथा साक्षिणः,
स्थाणोर्दक्षिणनासिकापुटभुवः श्वासानिलाः पान्तु वः ॥ २ ॥

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये, स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे, त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥

एक प्राचीन श्लोक और भी है जिसमें महादेव संसारोत्पादक बतलाया है—
निरुपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते । जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ॥

महाकवि कालिदास ने भी "जगतः पितरौ" (रघुवंश १–१) कह कर शिव के उत्पादक स्वरूप की ओर संकेत किया है । इस श्लोक में प्रत्याहारन्याय से संसार के धारक स्वरूप का भी शिवरूप में वर्णन समझना चाहिए ।

जिन श्वासों ने शिवजी के भस्म लगे गात्र पर से भस्म उड़ाकर उनका शरीर सीमन्तित (धारीदार) कर दिया है तथा जो कुम्भक प्राणायाम के द्वेषी हैं, जिनको शिव जी कान पर बैठा हुआ सांप आनन्द से खा रहा है तथा जो (गर्म होने के कारण) चन्द्रमा की शीतलता को दूर करने वाले हैं और जो क्रुद्ध पार्वती के शरीर की विलक्षणता या विभक्तता प्रकट कर रहे हैं एवं जो महादेव की चित्तव्यथा के साक्षी हैं । वे दक्षिण नासिका से निकलने वाले शिव जी के श्वास-प्रश्वास रङ्गस्थली में उपस्थित प्रेक्षकों की रक्षा करें ॥ २ ॥

विमर्श—इस श्लोक का भाव यह है कि–कवीश्वर ने इस पद्य में अर्धनारीश्वर शिव का वर्णन किया है । गङ्गा को सपत्नी समझ पार्वती उनसे असन्तुष्ट हैं, अतएव उनके वामभाग में स्थित पार्वती का शरीर मान के कारण स्तब्ध है । यह बात देखकर शिव जी का 'कुम्भक' प्राणायाम भी नष्ट हो चला । लम्बे-लम्बे श्वासों के कारण शिव जी के शरीर में लगी हुई धूलि भी उड़ गई, जिससे कि दूर से देखने वाला शिव के शरीर को साफ पहचान सकता है । शिव भस्म लगाते हैं तो पार्वती चन्दन, यद्यपि हैं दोनों श्वेत । लम्बी सांसों से शिवजी चित्तव्यथा भी अभिव्यञ्जित होती है । आजकर्णकुण्डल बने सर्प का भण्डारा है, क्योंकि उसका भोजन भी वायु ही ठहरा । इतने उष्ण हैं कि चन्द्र की ठण्डक

नान्द्यन्ते

सूत्रधारः—(परिक्रम्य विचिन्त्य च) अहो ! किमपि कमनीया कवेरात्मन्याशीः ।

आद्यः कन्दो वेदविद्यालतानाम् जैह्वं चक्षुर्निर्निमेषं कवीनाम् ।
यो येनार्थी तस्य तत् प्रक्षरन्ती वाङ्मूर्तिर्मे देवता संनिधत्ताम् ॥ ३ ॥

व्यासो वैखानसवृषा सत्यः सत्यवतीसुतः ।
भारतीं भारतकविर्दद्याद् द्वैपायनो मम ॥ ४ ॥

मालूम ही नहीं पड़ती । दक्षिण नासिका शिव की है वाम नासिका पार्वती की, शेष स्पष्ट है। इसी प्रकार का वर्णन कवि तार्किक शङ्कर मिश्र ने भी किया है—

मानापनोदनविनोदनते गिरीशे भासैव सङ्कुचितयोरुचितं तदिन्दोः ।
भेत्तुं भवानिशचितं दुरितं भवानि । नत्रोभवानि घनमङ्घ्रिसरोजयोस्ते ॥

नान्दी के अन्त में—

सूत्रधार—(घुमकर और सोचकर) ओहो ! कवि ने अपने विषय में कितना सुन्दर आशीर्वाद चाहा है ।

जो वाणी वेदविद्यारूपी लता का आदिकन्द है तथा कवियों के मुख में स्थित जिह्वा के रूप में पलकरहित चक्षु है जो जो कुछ चाहता है उसे वह ही देने वाली वाग्देवता मेरे मुख में निवास करे ॥ ३ ॥

विमर्श—'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः' इत्यादि वेद मन्त्र में परमात्मा को कवि कहा है। उस कवि का 'वेद' काव्य है, और यह वेदात्मक काव्य शब्दस्वरूप है । शब्द की उत्पत्ति जिह्वा से होती है, इसी वेदात्मक शब्द से अज्ञान का नाश होता है । इसीलिये इसको 'चक्षु' नाम से पुकारा है । आदि कवि परमात्मा और आधुनिक कवियों के मुख से जिह्वा के द्वारा प्रकाशित होती हुई वाणी अज्ञानतिमिर को हरती है ।

वानप्रस्थों में श्रेष्ठ, सत्यवादी, सत्यवती के पुत्र, द्वीप में उत्पन्न हुये, महाभारत के बनाने वाले महर्षि व्यास मुझे महाभारत बनाने वाली दिव्य भारती शक्ति प्रदान करें ॥ ४ ॥

(विमृश्य) अहो ! मसृणोद्भवा सरस्वती यायावरस्य,[1] यदाह—

ब्रह्मण्यः शिवमस्तु वस्तु विततं किञ्चिद् वयं ब्रूमहे
हे सन्तः ! शृणुतावधत्त विधृतो युष्मासु सेवाञ्जलिः ।
यद्वा किं विनयोक्तिभिर्मम गिरां यद्यस्ति सूक्तामृतम्
माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याञ्चा परं दैन्यभूः ॥ ५ ॥

(पुरोऽवलोक्य) कथम् । एते महोदयनगरलीलावतंसा विद्वांसः सामाजिकाः । तदेवं विज्ञापयामि ।

(अञ्जलिं बद्ध्वा)

सा सूक्तिर्निधिनाथकेलिचषकं वेणीविभूषामणिः
सीतायाः स च कुम्भसम्भवमुनेः प्राप्ता च सैकावली ।
पर्यङ्कः स च विद्रुमद्रुममयस्तद्धामसिंहासनम्
चिह्नं यस्य यशोनिधिर्विजयते सोऽयं रघोरन्वयः ॥६॥

(विचारकर) ओहो ! यायावर[1] की वाणी बड़ी सुन्दर है । जैसा कि वे लिखते हैं :—

ब्राह्मणों का कल्याण हो । हे विद्वानो ! मैं कुछ सविस्तर आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ । आप ध्यान से सुनिये यही करबद्ध प्रार्थना है । अथवा इस प्रकार के गिड़गिड़ाने में क्या रक्खा है, यदि मेरे वचनों में आनन्ददायक अमृत हो तो विद्वान लोग सुनकर स्वयं ही प्रसन्न होंगे, क्योंकि माँगना दीनता का उत्पादक है तथा दीनता बुद्धिहीनता का कारण होने से परित्याज्य है ॥ ५ ॥

(सामने देखकर) ऐसा क्यों ? क्योंकि इस महान् नगर के भूषणभूत विद्वान् यहाँ पर उपस्थित हैं अतः इनसे यह प्रार्थना करना उचित है कि :—

(हाथ जोड़कर)

वह सूक्ति अर्थात् रामायण, कुबेर का दिया हुआ प्याला, वह सीता की चूड़ामणि, वह अगस्त्य का दिया हुआ एकावली हार और वह लाल मणियों

१. "अथाश्वमेधीयो ययुर्यायावरोऽपि च" इति केशवः, इस केशवकोष के अनुसार 'यायावर' नाम अश्वमेधीय घोड़े का है, परन्तु यहाँ पर यज्ञ में दीक्षित विद्वान् के अर्थ में प्रयुक्त है, राजशेखर याज्ञिक कुलोत्पन्न थे; अतएव अपने आप को 'यायावर' शब्द से सम्बोधित करते हैं ।

अत्र हि

नमितमुरलमौलिः पाकलो[1] मेकलानाम्,
रणकलितकलिङ्गः केलिकृत्केरलेन्द्रः।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलानां कठोरो
हठविहतमठश्रीः श्रीमहीपालदेवः ॥ ७ ॥

तेन च रघुवंशमुक्तामणिनार्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनन्दनेनाराधिताः सभासदः। सर्वानेव वो गुणाकरः समाहूय

से खचित राम का सिंहासन ये जिसके चिह्न हैं वह यशस्वी रघु का वंश सर्वोत्कृष्ट है ॥ ६ ॥

विमर्श—कुबेर ने वनवासकाल में राम के दर्शन कर एक ऐसा प्याला उन्हें भेंट किया था, जो जब चाहो तब दूध से भर जाता था।

कौशल्या ने वनवास के लिये चलते समय एक चूड़ामणि सीता जी को प्रदान की थी। इसी प्रकार अगस्त्य आश्रम में विश्राम के समय अगस्त्य की पत्नी लोपमुद्रा ने ऋषि की अनुमति से सीता जी को एक एकावली हार दिया था। जिसे अगस्त्य मुनि को शेषनाग ने समुद्रयान करने के अवसर पर भेंट किया था। यह विशेषता केवल रघुकुल में पाई जाती है अन्यत्र नहीं।

इसी रघुवंश में—मुरलदेश के राजा के मस्तक को झुकानेवाला, मेकलदेशवासियों के लिये कूटपाकल नामक हस्तिज्वरस्वरूप, कलिङ्गदेश-वासियों को रण में पकड़ने वाला, केरलों से खिलवाड़ करने वाला, कुलूत देश को जीतने वाला, कुन्तलधारियों के लिये भयङ्कर, मठों का विध्वंसक राजा महीपाल हुआ था (यहाँ पर मठों से जैनमठ लिये गये हैं) ॥ ७ ॥

उसी रघुवंश के नेता आर्यावर्त के महाराजाधिराज श्री निर्भय नामक राजा के पुत्र राजा महीपाल ने सभासदों की आराधना की है।[2] आप सब लोगों को यह गुणाकर नामक सूत्रधार आह्वान करके सूचित करता है कि आप सब

१. "पाकलं कुष्ठ भैषज्ये पुंसिस्यात् कुञ्जरज्वरे" इति मेदिनी।

२. अर्थात् इस नाटक के द्वारा रङ्गस्थ मनुष्यों के मनोरञ्जन के लिये यह नाटक उपस्थित किया है।

सप्रश्रयं विज्ञापयति । विदितमेतत्तु भवतां यदुत नाट्याचार्येण रङ्गविद्याधरेण प्रतिज्ञातम्—

राजशेखरकवेर्महात्मनो बालभारतमिदं हि नाटकम् ।
योऽभिनेष्यति रसैर्निरन्तरं मत्सुतां स परिणेष्यति क्षितौ ॥ ८ ॥

(आकाशे) तत्रभवन्तः । किं ब्रूथ । इदं तद्बालभारतं "प्रचण्डपाण्डवमिति" यस्य सञ्ज्ञान्तरम् । (अञ्जलिं बद्ध्वा) यथादिशन्ति परिषदग्रेसराः । (किञ्चित् सलज्जम्) भवदनुचराः पञ्चभ्रातरो वयं पञ्चापि नाम समर्थास्तदभिनये । किं पुनरस्माकं पितृव्यपुत्रा भरतपुत्राश्च ते सन्ति । ते च तदभिनेतुमिच्छन्ति न च ते शक्नुवन्ति । एतन्निमित्तं महदस्वैरं[1] वैरं वर्तते । (आकाशे) तत्रभवन्तः ! किं ब्रूथ । एकविषया-

---

लोगों को नाट्याचार्य रङ्गविद्या के जानने वाले की यह प्रतिज्ञा मालूम ही होगी कि—

महाकवि राजशेखर के बनाये हुए रसों से परिपूर्ण बालभारत नामक नाटक का जो ठीक प्रकार अभिनय करेगा, वह ही मेरी कन्या का पाणिग्रहण करेगा ॥ ८ ॥

(आकाश में देखकर) क्या कहा ? वही बालभारत जिसका 'प्रचण्ड-पाण्डव' दूसरा नाम है ? हाँ, (हाथ जोड़कर) जो आप सब महानुभावों की आज्ञा । (कुछ लज्जा के साथ) हम पाँचों[2] भाई आपके सेवक हैं और हम पाँचों 'प्रचण्डपाण्डव' के अभिनय करने में समर्थ हैं, फिर हमारे चचेरे भाई और नटों की क्या आवश्यकता है जो कि अभिनय करना चाहते हैं, पर कर नहीं सकते । इसी कारण बड़ा[1] बुरा वैर हो गया है । (आकाश में देखकर) मान-

---

१. अस्वाभाविकमनुचितमित्यर्थः ।

२. इस वाक्य से यह प्रतीत होता है कि राजशेखर के पाँच भाई थे, तथा राजशेखर स्वयं तथा उसके अन्य चारों भाई अभिनय कार्य में बड़े पटु थे, किन्तु इस महाकवि के चाचा के लड़के भी भरतशास्त्र में निपुण थे अतः वे इस 'प्रचण्डपाण्डव' का अभिनय करना चाहते थे अतएव घर में ही कलह न हो, इस दृष्टि से राजशेखर ने स्वयं अभिनय करना छोड़कर उन्हें ही अभिनय करने का अवसर दे दिया ।

भिलाषो हि वैरकन्दं कन्दलयति। तद्भवद्भिः सह कुलान्तकरं वैरं तेषां यतो दुर्बुद्धयस्ते, सुबुद्धयो हि भवन्तः। उक्तं हि तेनैव महामन्त्रिपुत्रेण।

श्रियः प्रसूते विपदो रुणद्धि यशांसि दुग्धे मलिनं प्रमार्ष्टि।
संस्कारशौचेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किलकामधेनुः ॥ ९ ॥

(अञ्जलिं बद्ध्वा) प्रतिग्रहीतमार्यवचः। बद्धो वासीसग्रन्थिः। तदित्थमानमन्ति—

अनूचानो हि यद् ब्रूते सा स्वयम्भूः सरस्वती।
तदार्षं न मृषार्थं स्यात् सा दृष्टिर्विदुषां दृढा ॥ १० ॥

अपि च

आपन्नार्तिहरः पराक्रममहाधनः सौजन्यवारांनिधि-
स्त्यागीसत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तःकवीनां मतः।
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोह[1] (हि) णगिरेः किं तस्य साक्षादसौ

नीयो ! क्या चाहते हो कि एक विषय, एक विषय की अभिलाषा दो व्यक्तियों के वैर को बढ़ा देती है, इसी कारण आपके साथ उन लोगों का कुलनाशक वैर है और वे दुर्बुद्धि भी हैं। आप लोग समझदार हैं जैसा कि महामन्त्रिपुत्र राजशेखर ने कहा भी है।

कामधेनुस्वरूप शुद्ध बुद्धि सम्पत्ति की जननी है, विपत्ति नष्ट करती है, यश उत्पन्न करती है, कलङ्क दूर करती है और संस्कारों को पवित्र करती हुयी आत्मा को भी पवित्र करती है, यही कारण है कि यह कामधेनु है ॥ ९ ॥

(हाथ जोड़कर) आपकी बात मान ली। गाँठ बाँध ली क्योंकि वृद्धजनों का कथन है कि—

वेदज्ञ जो वाक्य बोलता है वह साक्षात् सरस्वती है, वे वाक्य ही आर्ष वचन हैं क्योंकि कभी झूठे नहीं हो सकते। एवं वही विद्वानों की सुदृढ़ दृष्टि है अर्थात् वेदवाक्य विद्वानों की सूक्ष्म बुद्धि के परिचायक हैं ॥ १० ॥

और भी—दुःखियों के दुःख हरने वाला, पराक्रमी सुजनता का समुद्र, दानी

---

१. "रोहिणश्चन्दनागिरि विन्ध्यस्तु जल वालुकः"—इति केशवः।
"सर्पवासश्च पाटीरो वेधकः पुंसि रोहिणः"—इत्यमरः।

देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः ॥११॥

तत्र चैवंविधो दैवज्ञानां प्रवादः ।

वभूव वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
ततः स्थितो यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥१२॥

(आकाशे) किं ब्रूथ । तत्प्रस्तूयतामिति । यदादिशन्ति गुरवः ।

(नेपथ्ये गीयते)

हरचूडामणिरिन्दुस्त्रिजगद्दीपश्च दिनकरो देवः ।
मासान्तं सङ्गताविह लोकस्य हिताय वर्तेते ॥ १३ ॥

सूत्रधारः—(आकर्ण्य) कथम् ॥ उपक्रान्तं भरतपुत्रैः । यद्वाल्मीकिव्यासयोः प्रावेशिकी ध्रुवा गीयते । (विचिन्त्य) ध्रुवा हि नाट्यस्य प्रथमे प्राणाः । यतः—

सत्यसुधा वहाने वाले चन्द्रमा के समान सुन्दर कवि सम्मानित अधिक क्या कहें गुणरत्नों के लिये मलयगिरि या सुमेरु के समान तथा राजा महेन्द्रपाल जिसका शिष्य है उस महामन्त्री के पुत्र राजशेखर क्या वर्णन किया जाय ॥ ११ ॥

उस ही कवि के विषय में ज्यौतिषियों का यह कहना है कि—

पहिले जन्म में जो वाल्मीकि कवि था वही बाद में भर्तृमेण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा अगले जन्म में भर्तृमेण्ठ ही भवभूति बना और आज वही वाल्मीकि, भवभूति का रूप परित्याग कर राजशेखर के रूप में विद्यमान है ॥ १२ ॥

(आकाश में देखकर) क्या कहते हो ? कि अब क्या देर है शीघ्र ही उस नाटक को आरम्भ कर दो, अस्तु जो महापुरुषों की आज्ञा ।

(नेपथ्य में गान)

महादेव का चूड़ामणि चन्द्र और संसार को प्रकाश देने वाला देव दिवाकर मास के अन्त में मिलकर इस संसार का हित करते हैं । अर्थात् आज मासारम्भ दिवस है जो बड़ा ही मनोहर है ॥ १३ ॥

सूत्रधार—(सुनकर) ओहो ! नटों ने तो नाटक खेलना प्रारम्भ कर दिया, जो कि वाल्मीकि और व्यास के प्रवेशकाल में ध्रुव नाम की गीति गाई जा रही है । (विचार कर) ध्रुवा तो नाटक की जान होती है ।

प्रथयति पात्रविशेषान्सामाजिकजनमनांसि रञ्जयति ।
अनुसंदधाति च रसान्नाट्यविधाने ध्रुवा[1] गीतिः ॥ १४ ॥

तद्भवतु । अहमप्यनन्तरकरणीयाय सज्जीभवामि । (इति निष्क्रान्तः)

इति प्रस्तावना

(ततः प्रविशति वाल्मीकिर्व्यासश्च)

व्यासः–(सपादोपग्रहम्) अद्भुतसंभव एष व्यासः पाराशर्योऽभिवादये ।

वाल्मीकिः—(पृष्ठे पाणिं निधाय) वत्स ! सात्यवतेय ! स्वप्रबन्ध-परिसमाप्त्या वर्धस्व ।

व्यासः—परमनुग्रहीतोऽस्मि । (अञ्जलिं बद्ध्वा)

क्योंकि—

ध्रुवा गीति पात्रों में विशेषता ला देती है, सामाजिक जनों के मनों को प्रसन्न करती है, और ध्रुवा गीति ही नाटक खेलते समय रसों को निरन्तर उत्पन्न करती है ॥ १४ ॥

अच्छा तो, में भी अब इसके-बाद जो कार्य करना है उसके लिए तैयार हूँ । (निकल जाता है)

इति प्रस्तावना

(फिर वाल्मीकि और व्यास आते हैं)

व्यास—(पैर छूकर) भगवन् ! विचित्रजन्मा पाराशरमुनिपुत्र व्यास आपको प्रणाम करता है ।

वाल्मीकि—(पीठ पर हाथ फेर कर) प्रियवर व्यास ! अपनी रचना समाप्ति के साथ-साथ वृद्धि प्राप्त करो ।

व्यास—आपका मुझ पर बड़ा अनुग्रह है । (हाथ जोड़कर)

---

१. "यथायोग्या ध्रुवाः पञ्च तथा वक्ष्यामि यत्नतः ।
आदावुत्थापनी कार्या परिवर्तस्तथा भवेत् ॥
अवकृष्टाड्डिता चैव विक्षिप्ता चैव पञ्चमी ।
एवं पञ्च ध्रुवा ज्ञेया उपोहनसमन्विता ॥"
"तालवादि नियमा ध्रुवा तु परिकीर्तिता" (नाट्यशास्त्र अध्याय ५)

योगीन्द्रश्छन्दसां द्रष्टा रामायणकविर्मुनि ।
वल्मीकजन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसो मुनिः ॥ १५ ॥

वाल्मीकिः—अष्टादशपुराणसंग्रहकारिन् ! महान्[1] वर्तते तवेतिहासो भारतम् ।

व्यासः—(सलज्जम्) पुनः पुनरविनयोद्घाटनेन लज्जयति मामुपाध्यायः । किं वयं रामायणकवेः पुरतः ।

ये विद्यापरमेश्वरप्रतिधियो ये[2] ब्रह्मपारायणा
येषां वेदवदादृता स्मृतिमयी वाग् लोकयात्राविधौ ।
याताः स्वर्गतरङ्गिणीमपि सदा पूतां पुनन्त्यत्र ता
व्युत्पत्त्या परया रसोपनिषदो रामायणस्यास्य ते ॥ १६ ॥

किञ्च, भगवन् प्रथमकवे !

यदुक्तिमुद्रा सुहृदर्थवीथी कथारसो यश्चुलुकैश्चुलुकयः ।
कर्णामृतस्यन्दि च यद्वचांसि रामायणं तत्कविरुत्पुनाति ॥१७॥

योगिराज, छन्दशास्त्र के पारदृश्वा, रामायण के रचयिता सबसे प्राचीन कवि भगवान् वाल्मीकि मुनि की जय हो ॥ १५ ॥

वाल्मीकि—हे अठारह पुराण के बनाने वाले ! तुम्हारा बनाया हुआ महाभारत का इतिहास बहुत बड़ा है ।

व्यास—(लज्जित होकर) आप मेरी धृष्टता को प्रकाशित करते हुए मुझे शर्मिन्दा करते हैं । रामायण रचयिता के सामने हम कौन हैं ।

जो कि सरस्वती और महादेव की भी बुद्धि में टक्कर लेने वाले, ब्रह्मवेत्ता, जिनकी स्मृति सदृश वाणी संसार में वेद के समान पूजी जाती है, वे इस रामायण की रस रहस्य निष्यन्दिनी व्युत्पत्तिपूर्ण वाणियाँ पवित्र स्वर्गङ्गा को भी पवित्र बना देती हैं ॥ १६ ॥

और हे आदिकवे !

जिस रामायण की शब्द रचना अर्थसौन्दर्यपूर्ण है, जिसकी कथा का रस अञ्जलियों से पेय है, जिसके वचन कानों में अमृत टपकाते हैं, उस रामायण को भी आप पवित्रता प्रदान कर रहे हैं ॥ १७ ॥

---

१. 'कियान्' इत्यपि पाठान्तरम् । २. अत्र 'ते' इति पाठान्तरं चिन्त्यम् ।

वाल्मीकिः—वत्स कृष्णद्वैपायन । कस्य पुनः कवेर्वचो भारतस्य षोडशीमपि कलां कलयति । यतः—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥ १८ ॥

किञ्च—

दन्तोलूखलिभिः शिलोञ्छिभिरिदं कन्दाशनैः फेनपैः
प्राणग्राशनिभिर्मिताम्बुकवलैः काले च पक्वाशिभिः ।
नीवारप्रसृतिंपचैश्च मुनिभिर्यद्वा त्रयीत्रायिभिः
सेव्यं भव्यमनोभिरर्थपतिभिस्तद्वो महाभारतम् ॥१९॥

किन्तु श्रुतमस्माभिर्यदुत रसविरसे कष्टकाव्येऽभिनिविष्टोऽसीति ।

व्यासः—इदमुपाध्यायपादेभ्यो विज्ञाप्यते ।

वाल्मीकि—प्रिय व्यास जी ! किस कवि की ऐसी वाणी है, जो महाभारत की सोलहवीं कला को भी प्राप्त कर सके ।

क्योंकि—

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के विषय में जो कुछ यहाँ है, वह ही और जगह है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं भी नहीं है ॥ १८ ॥

अधिक क्या ?

जिनके दन्त ओखली के तुल्य दृढ़ हैं, उन शिलोञ्छवृत्ति वाले, कन्दाशी, फेनपायी, वायुभक्षक, परिमितजलभोजी, समय पर पके फलादि के खाने वाले, मुट्ठी भर नीवार (धान) पकाने वाले और वेदत्रयी की रक्षा करने वाले प्रशान्तचित्त अर्थज्ञ मुनियों से आपका महाभारत पढ़ा जाने योग्य है ॥ १९ ॥

विमर्श—इसका भावार्थ यह ही नहीं है कि महाभारत को मुनिजन ही पढ़ें; किन्तु जब वह मुनिजनों के पढ़ने योग्य है तो सांसारिक जनों के लिये सुतरां योग्य है । जैसा कि ऊपर के श्लोक में लिखा है—इसके पढ़ने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुवर्ग की प्राप्ति होती है ।

हमने सुना है कि तुम कुछ कूट रचना की ओर झुके हो ।

व्यास—गुरुवर ! आपसे यह कहना है कि—

विनायको यः शिवयोरपत्यमर्धं पुमानर्धमिभश्च देवः ।
सवर्तते भारत संहितायाम् वृत्तस्तपोभिर्मम लेखकोऽत्र ॥ २० ॥

तेन च्छलयितुमहमुपक्रान्तः । यदुत बाढमहं ते लिपिकरः । किं पुनर्येन रंहसा लिखेयं तेन यदि संरभसे तत्ते विघ्नः स्यात् । ततो मयापि प्रतिच्छलितः । ओम् । अस्तु । किं पुनर्भवता भावयता लिखितव्यमित्यतः काव्यकष्टेऽभिनिविष्टोऽस्मि ।

वाल्मीकिः—कियान्वर्तते ते नवेतिहासः ।

व्यासः—समाप्त एव । किं तूपाध्यायपादैः स्वयंवराय पाण्डवप्रवेशं[1] यावदाकर्णित एव । तदेहि । प्राप्तां सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्महे । ततः श्रावयिष्यसि । संप्रति हि—

अयमहिमरुचिर्भजन् प्रतीचीं कुपितवलीमुखतुण्डताम्रबिम्बः ।
जलनिधिमकरैरुदीक्ष्यते[2] द्राङ्नवरुधिरारुणमांसपिण्डलोभात् ॥ २१ ॥

जो गणाधिपति गणेश जी शिव जी के पुत्र हैं, तथा जिनके मुख पर शुण्डा-दण्ड है, वे गणेश जी मेरे पुण्यों से मुझे लेखक मिले हैं ॥ २० ॥

उन्होंने मुझे ठगना चाहा कि मैं तुम्हारा लेखक बन सकता हूँ पर मैं तेजी से लिखूँगा, यदि बोलते-बोलते तुम रुक गये, तो मैं फिर न लिखूँगा । फिर मैंने भी उनसे कपट किया, कि हाँ, यही सही । पर आपको भी मेरे वाक्य को समझकर ही लिखना होगा । यही कारण है कि मैं कूटकाव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुआ हूँ ।

वाल्मीकि—तुम्हारा महाभारत कितना और शेष है ।

व्यास—अब तो समाप्त होने को है । आप पाण्डवों के स्वयंवर के लिये प्रवेश तक का भाग तो सुन ही चुके हैं । तो आओ ! शाम की सन्ध्या कर लें । तब सुनाना । क्योंकि अब—

यह सूर्यदेव पश्चिम दिशा की ओर जाता हुआ कुपित बन्दर के मुख के समान लालवर्ण हो रहा है । समुद्र के मकर ताजा मांस का पिण्ड समझकर लालायित हो इसकी ओर टकटकी लगा रहे हैं ॥ २१ ॥

---

१. 'प्रदेशः' इत्यपि पाठान्तरम् ।
२. 'उद्वीक्ष्यते' इत्यपि पाठान्तरम् । इस पाठ में छन्दोभंग है ।

निर्यद्वासरजीवपिण्डकरणीं बिभ्रत् कवोष्णैः करै-
र्भ्राजिष्णुं रविबिम्बमम्बरतलादस्ताचलं चुम्बति ।
किं चास्तोकतमः कलापकलनाश्यामायमानं मनाग्,
धूमध्यामपुराणचित्ररचनारूपं जगज्जायते ॥ २२ ॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

(इति विष्कम्भकः)

(ततः प्रविशति ब्राह्मणवेषो युधिष्ठिरो भीमसेनादयश्च, सहेदव इतरतः)

(सर्वे परिक्रामितकेन)

युधिष्ठिरः—वत्स सोदर ! वृकोदर ! परपुरञ्जय ! धनञ्जय ! मण्डित-

दिन के प्राणों के निकलते समय कुछ उष्ण किरणरूप हाथों से भानुदेव पिण्डदान कर रहा है और उसका तेजस्वि मण्डल आकाश से अस्ताचल की ओर जा रहा है, तथा धीरे-धीरे बढ़ते हुए अन्धकार समूह से काला होता हुआ संसार धुयें से [1]ध्यामे (धुँधले) चित्र के समान दिखाई दे रहा है ॥ २२ ॥

विमर्श—श्रद्ध में दिये हुए पिण्डदान की क्रियाविशेष को 'पिण्डकरणी' कहते हैं। यहाँ पर दिन को सूर्य का पुत्र माना है वह अपने पुत्र दिवस के मरण होने पर शव ले जाते समय पिण्डदान कर रहा है। 'करैः' शब्द के श्लिष्ट होने से किरणरूपी हाथों में बिम्बरूपी पिण्ड को ग्रहण करता हुआ रविरूपी कर्ता निर्दिष्ट किया गया है। रवि और उसके बिम्ब के एक होने पर भी बुद्धिकृत विभाग-कल्पना द्वारा यह अर्थ संगत होगा।

(दोनों घूमकर निकल गये)

(विष्कम्भक समाप्त)

(ब्राह्मण के वेष में युधिष्ठिर और भीमसेन आते हैं। सहदेव दूसरी ओर से आता है।)

(सब घूमकर)

युधिष्ठिर—प्रिय भाई भीम ! शत्रुञ्जय अर्जुन ! पाण्डवकुलभूषण नकुल !

---

१. "ध्याम" शब्द श्यामलवाची है जैसा कि मेदिनी कोषकार ने कहा है—
"ध्यामं दमनके गन्धतृणेऽथ श्यामले त्रिषु"

पाण्डवकुल नकुल ! द्विषद्दुःसह ! सहदेव ! इह हि महाराज समाजे न जाने कमवलम्बिष्यते राधावेधवैजयन्ती ।

भीमः—(विहस्य)

आर्यो वेत्ति निजां न विक्रमकलां त्वं विश्वरक्षामणिः
किं ब्रूमोऽस्य किरीटिनो भुजबलं द्रोणेन यस्योपमा ।
माद्रीनन्दनयोर्नरेन्द्र ! विनयच्छन्नं हि वीरव्रतं
न भ्राता स तवास्ति यस्य पुरतो राधां परो विध्यति ॥२३॥

अर्जुनः—

दुर्नमं यदि मुरारिकार्मुकं दुर्भिदं यदि शरव्यमुच्छ्रितम् ।
दुर्जया यदि च राजमण्डली तत्प्रभो ! द्रुपदजा न दुर्लभा ॥२४॥

नकुलः—निखिलनरेन्द्राधिष्ठितान् मञ्चसञ्चयानपास्य मुनिजनप्राय-

शत्रुनाशक सहदेव ! इस महाराजाओं के समुदाय में न मालूम राधा लक्ष्य के वींधने की विजयपताका किसे मिलेगी ।

भीम—(हंसकर) आप अपने पराक्रम को नहीं पहचानते आप विश्व की रक्षा में समर्थ हैं । इस अर्जुन का भुजबल भी आचार्य द्रोण के तुल्य है । नकुल और सहदेव की वीरता विनय से छिपी हुयी है, तुम्हारे भाइयों में कोई ऐसा नहीं, जिसके रहते कोई और राधा[1] का वींध सके ॥ २३ ॥

अर्जुन—यदि मुरारि का धनुष झुकाया नहीं जा सकता, यदि उन्नत लक्ष्य भेदना कठिन है, यदि राजसमूह को जीतने की सामर्थ्य नहीं, तो न हो, परन्तु द्रौपदी की प्राप्ति दुर्लभ नहीं । अथवा—

विष्णु का धनुष (शेषनाग) प्रबलशक्ति से तथा बार-बार प्रयत्न करने पर भी यदि झुकाया जा सका, एवं यदि लक्ष्यभेद कठिनता से भी हो सका तथा अक्रान्ता राजसमूह को किसी तरह भी परास्त किया जा सका तो मैं इन कार्यों को अवश्य पूर्ण करूँगा तथा उस अवस्था में द्रौपदी की प्राप्ति दुर्लभ न होगी ॥ २४ ॥

नकुल—सारे राजाओं से शोभित मञ्चों की ओर न जाकर मुनियों से

---

१. "राधा" उस मत्स्यविशेष का नाम है जिसको अर्जुन ने द्रौपदी-स्वयंवर में बींधा था ।

विप्रजनपरिगृहीतं मञ्चमारोहामः। वयमपि ब्राह्मणवेषधारिण एव।

(सर्वे समारुह्य यथोचितमुपविशन्ति)

(नेपथ्ये)

इदो इदो कुमारधट्टज्जुणो भट्टिदारिआ अ।

(इत इतः कुमारधृष्टद्युम्नो भर्तृदारिका च)

युधिष्ठिरः—प्राप्तैव स्वयंवरयित्री।

(ततः प्रविशति सधृष्टद्युम्ना द्रौपदी वन्दी सखी च परिक्रामितकेन)

धृष्टद्युम्नः—(एकतोऽवलोक्य) कथम् तात द्रुपदमनुग्रहीतुं महर्षयोऽपि-स्वयम्वरयात्रासञ्चमभ्यासते। तदेनानभ्यर्चयामि। (सप्रणयमञ्जलिं बद्ध्वा)

स्वस्त्यापस्तम्ब ! तुभ्यं त्वमसि ननु मुने ? कस्य नो माननीय-
स्त्वां वन्दे याज्ञवल्क्य ! द्विजसदसि कवे ! त्वां स्तुवे भारतस्य।
विश्वामित्रः पवित्रं जगति विजयतां काममत्रे ! नमस्ते
विश्वपूष्ठे वसिष्ठे कृत नतिरपरान् स्तौमि हर्षान्महर्षीन् ॥२५॥

अधिष्ठित मंचों की ओर हम लोग क्यों न बढ़ें, क्योंकि हम भी तो ब्राह्मणों का सा वेष धारण किए हैं।

(सब मंचों पर चढ़ कर यथोचित बैठ जाते हैं)

(नेपथ्य में)

(कुमार धृष्टद्युम्न और राजकुमारी जी इधर से आइए)

युधिष्ठिर—ओहो ! स्वयंवरण करने वाली आ गई।

(पटाक्षेप से धृष्टद्युम्न, बन्दी, सखी और द्रौपदी सब प्रवेश करते हैं)

धृष्टद्युम्न—(एक ओर देखकर) ओहो ! पिता जी पर कृपा करके महर्षिगण तक स्वयंवर में पधारे हुए हैं तो इनका सर्वप्रथम सत्कार करना उचित है। (श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर)

हे महर्षि आपस्तम्ब ! आप किसके पूज्य नहीं, महर्षि याज्ञवल्क्य ! तुम्हें[1] प्रणाम हो। महाभारतकार महर्षि व्यास जी ! आपके चरण छूता हूँ। महामुने विश्वामित्र ! तुम संसार में श्रेष्ठ हो। महामुने अत्रे ! और विश्ववन्द्य वसिष्ठ ! तथा

---

१. "काममन्त्रे" यह पाठान्तर है, तथा २५ व २६वें श्लोक में "स्वस्ति" शब्द केवल मंगलवाची है जो कि प्राचीन पत्र लेखन पद्धति का एक प्रकार है।

(द्रौपदी प्रणमति) णमो णमो महामुणीणं तुम्हाणम् । (नमो नमो महामुनिभ्यो युष्मभ्यम्)

धृष्टद्युम्नः—(अन्यतोऽवलोक्य)

लक्ष्मीसंवरणैभुजैर्नृपतयः स्वस्त्यस्तु वः स्वागतम्
नन्वेते गृहमेधिनो धुरि वयं यद्यूयमभ्यागताः ।
दृष्टः केन भवादृशां पुनरियान्पूज्यः समाजो जग-
त्युत्कण्ठा भवतां च संप्रति पुरः सेयं स्थिता द्रौपदी ॥ २६ ॥

सखी—इदो इदो भट्टिदारिआ । (इत इतो भर्तृदारिका)

युधिष्ठिर;—(सस्पृहमवलोक्य) हंहो लोचनचकोरकौ ! आतृप्तेरापिबतं द्रौपदीवदनेन्दुचन्द्रिकाम् ।

कण्ठे मौक्तिकदाम गण्डतलयोः कार्पूरमच्छं रजः
सान्द्रं चन्दनमङ्गके विचिकिलस्रक्शेखरो मूर्धनि ।
तन्वी बाढमियं चकास्ति तरुणी चीनांशुकं बिभ्रती
शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योम्नि द्रुतं गच्छतः ॥ २७ ॥

अन्य उपस्थित महर्षियों आप सब के लिये मैं आनन्दित होकर प्रणाम करता हूँ ॥

(द्रौपदी प्रणाम करती है) आप सब महामुनियों को प्रणाम हो ।

धृष्टद्युम्न—(दूसरी ओर देखकर) लक्ष्मीरक्षक भुजाओं वाले राजाओं ! तुम्हारा स्वागत हो । तुम्हारे आने से आज हम गृहस्थों में सर्वश्रेष्ठ बन रहे हैं । आप जैसों का इतना बड़ा समुदाय किसने देखा है । आप लोगों की उत्कण्ठा का कारण यह द्रोपदी आप सबके सामने उपस्थित है ॥ २६ ॥

सखी—हे राजकुमारी ! इधर से चलिये ।

युधिष्ठिर—(प्रेमपूर्वक देखकर) मेरे चक्षुचकोरो द्रौपनी के मुखचन्द्र की चन्द्रिका का यथेच्छ पान कर लो ।

द्रौपदी के गले में मोतियों की माला है, गालों पर कर्पूररज मल रक्खी है, गाढ़े चन्दन का लेप शरीर पर है, खिले फूलों की एक माला सिर पर है, देखने में दुबली-पतली है, रेशम की ओढनी और रेशमी साड़ी पहिने हुए है । ऐसा मालूम पड़ता है कि आकाश में झपटकर चलने के कारण चन्द्रलोक की अधिष्ठात्री देवता वहाँ से मर्त्यलोक में आ पड़ी हो ॥ २७ ॥

भीमः—(द्रौपदीसंभावनमनुसंधाय स्वगतम्)

पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्यां
श्रोणीबन्धस्त्यजति तनुतां सेवते मध्यभागः ।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयं तु वक्त्रं
तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥ २८ ॥

अर्जुनः—(स्वगतम्) हृदय ! कारय चक्षुषी पारणाम् । पुरतो द्रौपदी । अस्याः खलु वयोविशेषोचितमिदमधुना संभाव्यते ।

शारीद्यूतकलाकुतूहलि मनश्छेकोक्तिशिक्षारति-
र्नित्यं दर्पणपाणिना सहचरीवर्गेण चाचार्यकम् ।
प्रौढस्त्रीरचितानुवृत्तिषु रसो बाल्येऽपि लज्जा मनाक्
स्तोकारोहिणि यौवने मृगदृशः कोऽप्येष रम्यः क्रमः ॥ २९ ॥

नकुलः—(स्वगतम्) नेत्रे ! यथाशक्ति विस्तारं भजतम् ।

भीम—(द्रौपदी के रूप की मन में प्रशंसा करके)

युवावस्था के कारण द्रौपदी के पैरों की चपल गति आंखों ने ले ली, नितम्बों की कृशता मध्यभाग ने ले ली, वक्षःस्थल कुछ उन्नत हो गया अर्थात् वक्षःस्थल का एकत्व (समता) कुचों द्वारा हट गया है और मुख को प्राप्य हो गया अतएव मुख निरुपम बन गया, इस प्रकार यौवन ने अङ्गों के गुणों का परस्पर परिवर्तन कर दिया ॥ २८ ॥

अर्जुन—(मन में) मेरे हृदय ! द्रौपदी सामने खड़ी है, आंखों को तृप्त कर ले । अब यौवन के कारण निम्न बातों का होना द्रौपदी में संभावित है ।

इसका मन जुआ खेलना चाहता होगा, विद्वानों के वचन या वक्रोक्ति सुनने की रुचि होगी, शीशा हाथ में लिये हुए सखियों से शृंगारित होना चाहती होगी, प्रौढ़ स्त्रियों की सेवा पसन्द होगी, लड़कपन के कार्यों से शर्माती होगी, इस बढ़ते हुए यौवन का क्रम युवतियों में अद्भुत दिखाई पड़ता है ॥ २९ ॥

नकुल—(मन में) आंखों ! अच्छी तरह विस्तृत हो जाओ ।

२ प्र० पा०

स्मितपरिचितावृत्तिर्वाचामपाङ्गतरंगितं
नयनचरितं पादन्यासो नितम्बभरालसः ।
अहह ! सुतनोर्लीलासूत्रैः कृतं पदमङ्के
वहतु मदनः शोभामात्रं धनुर्ननु संप्रति ॥ ३० ॥

सहदेवः—(स्वगतम्) क्षणं चक्षुषी निमेषदोषमपाकुरुतम् ।

इदमग्रे हृदयलेह्यममानुषं लावण्यम् ।
तरङ्गय मनाग् दृशौ स्थगय दिङ्मुखान्युत्पलैः
करौ वलय ! जायतां सरसिजाकरो जङ्गमः ।
विहस्य पुनरुक्ततां सुतनु ! लम्बयैकावली-
मुदञ्चय मुखं भवत्ययमकाण्डचन्द्रोदयः ॥ ३१ ॥

बन्दी—(तारं स्वरमास्थाय)
सकलभुवनरक्षाः स्रस्ततन्द्रा नरेन्द्राः
शृणुत गिरमुदारामादराच्छ्रावयामि ।

देखो द्रौपदी लज्जा से बोलती नहीं केवल मुस्कराती है। आंखें कटाक्ष से देखती हैं सामने से नहीं, पैर नितम्ब के भार से धीरे-धीरे पड़ रहे हैं। इस सुतनु के शरीर में यौवन का विलास पूर्णरूप से हो रहा है। अब कामदेव ! अपना धनुष केवल शोभा के लिये ही भले धारण करो, असली कामदेव का धनुष तो द्रौपदी ही है ॥ ३० ॥

सहदेव—(मन में) आंखो ! तनिक पलक मारना ही छोड़ दो। देखो यह मनोहर दिव्य लावण्य सामने है।

हे द्रौपदी ! जरा आंखें उठाओ, तथा दिशाओं को नील कमलों से ढक दो (यहाँ कटाक्षों को नीलोत्पल कहा है)। हाथों को सविलास चलाओ, जिससे संसार में जंगम कमल घूमने लगें (यहाँ दोनों हाथों का कमल कहा है) हँसने के द्वारा एकावली हार को व्यर्थ सिद्ध कर दो (यहाँ एकावली और हास में सफेदी के साम्य से ऐसा कथन है), तथा मुख ऊपर उठाओ कि असमय में ही चन्द्रमा चमक उठे ॥ ३१ ॥

बन्दी—(जोर से चिल्लाकर)

सारे संसार की रक्षा करने वाले राजाओं 'सावधान होकर मेरी बात सुनो,

इह हि सदसि राधां यः शरव्यां करोति
स्मरविजयपताका द्रौपदी तत्कलत्रम् ॥ ३२ ॥

सखी—कथं। विब्भमतण्डविदभूलदामञ्जरी भमररिञ्छोलीलञ्छिदेण णअणकन्दोट्टवत्तेण घोट्टन्तं विअ दोवदीवअणलावणं सअं इदोमुहं पडिवट्टणि णरेन्दचक्कं। (कथं विभ्रमताण्डवितभ्रूलतामञ्जरी भ्रमररिञ्छोलीलाञ्छितेन[१] नयनकन्दोद्वर्तेन घट्टयदिव द्रौपदीवदनलावण्यं सर्वमितोमुखं परिवर्तते नरेन्द्रचक्रम्)

वन्दी—अहह ! कुसुमायुधस्याप्रतिहतं भगवतः शासनम् । यतः—

जातं ताण्डवितभ्रु चक्षुरधुना कण्ठो लुठत्पञ्चमः
संवृत्तोऽस्य, करोत्ययं तरलितं हारं करान्दोलनैः ।
मिथ्यासौ स्मयते स्थितो भणितिभिः किं चैष वैपञ्चिको
यत्सत्यं मदिरां विनैव मदनो यूनां मदोन्मादभूः ॥ ३३ ॥

जिसे मैं आदरपूर्वक आपलोगों को सुनाता हूँ। इस सभा में जो मनुष्य राधा (मत्स्य लक्ष्य विशेष) का वेधन करेगा, उसे कामदेव की विजय-वैजयन्ती स्वरूप द्रौपदी भार्या रूप में प्राप्त होगी ॥ ३२ ॥

सखी—ओहो ! विस्मय से भौहों को चलाते हुए मानों भ्रमरावली से युक्त नयनद्वय के चलाने से द्रौपदी के मुख के सौन्दर्य से अञ्जन लगाता हुआ सारा राजाओं का समुदाय इधर ही देख रहा है ।

वन्दी—क्या कहें भगवान् कामदेव की आज्ञा टाली नहीं जा सकती—क्योंकि—

युवकों के कटाक्ष चलने शुरू हो गये, कण्ठ से पञ्चमस्वर की ध्वनि आ रही है। यह व्यक्ति हाथ से हिला-हिला कर हार को नचा रहा है। यह वीणावादक स्वयं चुप होकर व्यर्थ ही मुस्करा रहा है (स्वयं तो चुप हुआ है पर ऐसा

१. भ्रमर रिञ्छोली वाक्य में 'रिञ्छोली' शब्द देशी है तथा गतिवाचक है। अर्थात् भ्रूलता के नीचे गोलक में राजाओं की काली २ पुतलियाँ द्रौपदी की ओर उठीं, मानों लतापुष्प पर भौंरा इधर उधर उड़ रहा है। सादृश्य से नेत्रकनीनिका को भौंरा बतलाया गया है।

कथम्, अहंपूर्विकया सर्वेऽपि धनुरारोपयितुं संरम्भन्ते ।

धृष्टद्युम्नः—हंहो कन्दर्पचण्ड ! निवार्यतामियमहमहमिका महीपालानाम् ।

बन्दी—(किञ्चिदुच्चैः)

सर्वे कार्मुककर्मठाः क्षितिभुजः सर्वे च शृङ्गारिणः
सर्वे मानमदोद्धताः शृणुत मे वन्द्यं वचो बन्दिनः ।
दुर्धर्षं धनुरच्युतस्य पणितं तच्चाध्यवस्यत्यसौ
यस्य स्थाम महद्धि, तत्र न यदि व्रीडा यशःखण्डिनी ॥ ३४ ॥

(सर्वे परिक्रामितकेन)

बन्दी—(द्रौपदीं प्रति)

शम्भोर्मूर्ध्नि गतागतानि कुरुते या चन्द्रलेखाङ्किते
तस्याः शान्तनवोऽयमुज्ज्वलयशाः स्वर्गापगायाः सुतः ।

लगता है कि मानो किसी के कहने से चुप हुआ है ।) सचमुच कामदेव मदिरा के बिना ही युवा पुरुषों को उन्मत्त बना रहा है । (इसमें काम-विलासों का वर्णन है) ॥ ३३ ॥

ओहो ! सब राजा लोग मैं मैं करके एक साथ ही धनुष पर टूट पड़े ।

धृष्टद्युम्न—अरे कन्दर्पचण्ड ! इन राजाओं की छीना-झपटी को बन्द करो ।

बन्दी—(कुछ जोर से)

उपस्थित धनुधारी, वीर, शृङ्गारी, मनस्वी, मानी, राजाओ मुझ बन्दी की प्रार्थना को ध्यान से सुन लो कि यह विष्णु भगवान् का धनुष चढ़ाना बड़ा कठिन है, इसको उठाने का वही यत्न करे, जो अपने को बलिष्ठ समझता हो अथवा न उठने पर जिसे यशोनाशक लज्जा से लज्जित होने के अवसर आने की संभावना न हो ॥ ३४ ॥

(सब घूमकर)

बन्दी—(द्रौपदी से)

जो गङ्गा महादेव की चन्द्ररेखा से विभूषित मस्तक पर आवागमन करती रहती है, उसके पुत्र पितामह भीष्म सामने हैं । परशुराम के बाणों के घावों से

वन्दित्वा तमुदग्रभार्गवशरश्रेणीव्रणालङ्कृतम्
भीष्मं सुभ्रु ! ततः स्वयंवरनृपान् प्रत्येकमालोकय ॥३५॥

सखी—दुवदणन्दिनि ! गङ्गातणओ सन्तणवो एसो । ता गुरुत्तणेण पणमिज्जदु । (द्रुपदनन्दिनि ! गङ्गातनयः शान्तनव एषः । तद्गुरुत्वेन प्रणम्यताम्)

द्रौपदी—जो किल कुमारस्सबह्मआरी । णमो णमो कोरवपाण्डवाणं पिदामहस्स । (यः किल कुमारसब्रह्मचारी । नमो नमः कौरवपाण्डवानां पितामहाय)

(सर्वे परिक्रामितकेन)

बन्दी—(स्वगतम्) अये ! भगवतो भीष्मादनूनगरिमा द्रोणाचार्य एषः । (सप्रकाशम्)

सदाशिवप्रशिष्योऽयमवधिः सर्वधन्विनाम् ।
आकर्णपलितः सुभ्रु ! द्रोणाचार्यः प्रणम्यताम् ॥ ३६ ॥

द्रौपदी—जो कौरव पण्डवाणं धणुव्वेअविज्जागुरु । (यः कौरवपाण्डवानां धनुर्वेदविद्यागुरुः)

अलंकृत शरीर वाले इस भीष्म जी को प्रणाम करके फिर उपस्थित वरणीय एक-एक राजा को देखो ॥ ३५ ॥

सखी—हे द्रौपदि ! यह गङ्गा के पुत्र भीष्म जी हैं, इन्हें गुरुभाव से प्रणाम करो ।

द्रौपदी—जो कार्तिकेय के शिष्य (बाल ब्रह्मचारी) और कौरव पाण्डवों के पितामह हैं, उनको प्रणाम हो ।

(सब घूमकर)

बन्दी—(मन में) ओहो ! भीष्म जी से जो गुरुपने में कम नहीं ऐसे द्रोणाचार्य जी यही हैं । (सब के सामने)

हे सुभ्रु ! द्रौपदि ! सदाशिव महादेव के प्रशिष्य, प्रथम धनुर्धर, जिनके कानों के भी बाल सफेद हैं ऐसे द्रोणाचार्य जी को प्रणाम करो ॥ ३६ ॥

द्रौपदी—क्या वे ही द्रोणाचार्य ? जो कौरव और पाण्डवों के धनुर्वेदविद्या के गुरु हैं ?

बन्दी—(निजदोःस्तम्भसंभावनागर्वचर्वितविवेकान्नृपतीनवलोकयति)

द्रोणः—

शिष्योऽस्मि भार्गवमुनेः कुरुपाण्डवानां
कोदण्डकर्मणि गुरुस्तदिदं ब्रवीमि।
हे भूभुजो जयवपूंषि धनूंषि धत्त
मुक्त्वार्जुनं तु भुवि विध्यति कोऽत्र राधाम् ॥ ३७ ॥

द्रौपदी—णमो दे दोणस्स सकलकोरवपाण्डवाणं गुरुस्समुक्खस्स।
(नमस्ते द्रोणाय सकलकौरवपाण्डवानां गुरूणां मुख्याय)

(सर्वे परिक्रामितकेन)

बन्दी—

दूरोदञ्चिमरीचिरत्नरचनाचित्रं तनुत्रं तनो
रुत्कृष्य त्रिदशेश्वराय ददतो यस्य स्मितं चक्षुषा।
पाञ्चाली वदनेन्दुसुन्दरतया तेनैव पर्यश्रुणा-
सोऽयं पश्यति दुर्धरं धनुरिदं राधां च राधासुतः ॥३८॥

बन्दी—(अपने भुजबल के मद से उन्मत्त राजाओं को देखकर—)

द्रोण—मैं भार्गवमुनि का शिष्य हूँ तथा धनुर्वेद में कौरव तथा पाण्डवों का गुरु हूँ। हे राजाओ! भले ही आप विजयी धनुर्धर हों पर अर्जुन को छोड़कर और कोई भी राधा मछली का वेध नहीं कर सकता।

द्रौपदी—कौरव तथा पाण्डव कुल के गुरु, आचार्यवर्य को प्रणाम हो।

(सब घूमकर)

बन्दी—निकलती हुयी किरणों से चमचमाते हुए कवच को अपने शरीर से उतारकर इन्द्र को देते हुए, जिसे जिन आँखों से हंसी आ गयी थी, आज उन्हीं नेत्रों में आँसू भरे हुए यह कर्ण द्रौपदी के सुन्दर मुख और दुराकर्ष धनुष की ओर बराबर देख रहा है। (उसे सन्देह है कि धनुराकर्षण का अवसर मिलेगा या नहीं) ॥ ३८ ॥

(विचिन्त्य) अहो! महाप्रभावं भार्गवं धनुर्यदमुना मम चक्षुर्ज्ञानमुन्मीलितं येनात्र प्रभावं भावं च भूपतीनां प्रत्यक्षमिव पश्यामि।

सखी—सहि! दाणकित्तिसंताप्पिदसुअणकणो एसो। (सखि! दानकीर्तिसमर्पितसुवर्णः कर्ण एषः)

द्रौपदी— जोदुज्जोहणपसादलद्धचम्पावदित्तणो। (यो दुर्योधनप्रसादलब्धचम्पापतित्वः)

बन्दी—अहो! महात्मनामपि कैतवानुगृहीता वृत्तयः।

यदेषः—

दुर्नमं त्विह न भार्गवं धनुः, संशये न च सतां प्रवृत्तयः।
अङ्गराज इति चिन्तयन्निव भ्राजते, व्रज पुरः, कुरूद्वहम्॥ ३९॥

(सर्वे परिक्रामितकेन)

(स एव प्रकाशम्)

यौवराज्याभिषेकार्हो वीरदुर्योधनानुजः।
दुःशासनो महावेष एष मञ्चं विमुञ्चति॥ ४०॥

(सोचकर) ओहो! परशुराम के धनुष का बड़ा भारी प्रभाव है, जिससे राजाओं के प्रभाव तथा भाव को मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ।

सखी—हे सखि द्रौपदि! दान की कीर्ति के लिये इसने स्वर्णदान बहुत दिया है। क्या यह वही कर्ण है?

द्रौपदी—दुर्योधन की कृपा से इन्हें चम्पावती का राज्य भी मिल गया है।

बन्दी—ओहो! बड़े आदमी कपट करते हैं—जो कि यह कर्ण कहता है कि यह भार्गव धनुष का उठाना कुछ कठिन कार्य नहीं, वही अङ्गराज यही सोचता हुआ धनुष नहीं उठा रहा है, क्योंकि सन्दिग्धावस्था में सज्जन लोग अपना उद्योग ही नहीं करते (क्योंकि उसे सन्देह है कि यदि धनुष न उठा तो मेरी अपकीर्ति होगी)। हे द्रौपदि! चलो आगे बढ़ो कुरुपति के सामने चलो॥३९॥

(सब घूमकर)

(वही जोर से)

युवराज बनने योग्य, वीर दुर्योधन का भाई, यह दुःशासन बहुमूल्य वेष में धनुष उठाने को उठ रहा है॥ ४०॥

द्रौपदी—जो दूसल पहुठीणं एक्कोणसदस्स जेट्ठो दुज्जोहणणरेन्दस्स।
(यो दुःशलप्रभृतीनाम् एकोनशतस्य ज्येष्ठो दुर्योधनरेन्द्रस्य)

धृष्टद्युम्नः—(स्वगतम्)

यथार्थनामा दुःशासनः एवायम् ।

चापं प्रति त्रिचतुराणि पदानि दत्त्वा कृष्णाहठग्रहनिमित्तविषण्णचेताः ।
दुःशासनो नृपतिचक्रविमुक्ततारहुङ्कारलज्जितमनाः शनकैः प्रयाति ॥४१॥

द्रौपदी—अदिमेत्तचण्डचरिदो एसो । (अतिमत्तचण्डचरित्र एषः)

बन्दी—(निरूप्य) नमो नमो विष्णुकोदण्डाय सपाणिबन्धम् ।
(स्वगतम्)

द्रौपदीं परिणयन्तमर्जुनं विद्धराधमवलोक्य मायया ।
दोर्वलं विफलमात्मनो विदन् व्रीडयैष विनतो निवर्तते ॥ ४२ ॥

(परिक्रामितकेन)

द्रौपदी—दुःशल आदि ९९ राजा दुर्योधन के भाइयों में यह सबसे बड़ा है।

धृष्टद्युम्न—(मन में) इसका दुःशासन नाम अन्वर्थ है।

दुःशासन तो—

धनुष की ओर तीन चार पैर बढ़ाकर फिर द्रौपदी के बलात् ग्रहण करने के भाव से दुःखित चित्त होकर, राजाओं के उच्च हुंकार से शर्माता हुआ (क्योंकि हुम्-हुम् कहकर राजाओं ने उसे ताने मारने शुरू कर दिये थे) अतः वह लज्जित होता हुआ धीरे-धीरे लौट रहा है ॥ ४१ ॥

द्रौपदी—इसके चरित्र बड़े उन्मत्ततापूर्ण तथा भयङ्कर हैं।

वन्दी—विष्णु भगवान् के धनुष को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। (मन में) क्योंकि जिस धनुष की माया से अर्जुन को राधा को बींधते हुए तथा द्रौपदी के साथ विवाह करते हुए देखकर (यह सब माया है) स्वयं लज्जित होता हुआ दुःशासन लौट रहा है ॥ ४२ ॥

(घूमकर)

गान्धाराधिपतेः पुत्रः सुबलस्य महीयसः।
मातुलः कुरुराजस्य राजते नृपतिर्गुणैः ॥ ४३ ॥

द्रौपदी—जो जूदकेदवविअक्खणो सुणीअदि। (यो द्यूतकैतवविचक्षणः श्रूयते)

सखी—आम। एदस्स किल हिअअचिन्तिदा पासआ णिवडन्ति। भीमसेणस्स उण हत्थिक्कदा। (आम्। एतस्य किल हृदयचिन्तिताः पाशकाः निवर्तन्ते। भीमसेनस्य पुनः हस्तकृताः।)

बन्दी—

यात्रावतोऽस्य चतुरंगचमूसमुत्थे पांसूत्करे वियति सर्पति वीतरन्ध्रे।
दिङ्नागनागपतिकेशवकच्छपानां मूर्ध्नि क्षणाद्भवति भूवलयस्य भारः॥

(स्वगतम्)

धारितं द्रुपदजास्वयंवरे कार्मुकं शकुनिना करेण यत्।
तस्य सर्वजनहासहेतवे कन्धरां समधिरुह्य तत्स्थितम् ॥ ४५ ॥

देखो द्रौपदी यह गान्धार (कन्धार) देश के राजा सुबल के पुत्र दुर्योधन के मामा शकुनि सामने बैठे हैं ॥ ४३ ॥

द्रौपदी—जो कपटद्यूत में बड़ा चतुर सुना जाता है।

सखी—हाँ, इसके विचार मात्र से पाँसे लौट आते हैं और भीमसेन के हाथों से अभिमन्त्रित करने पर लौटते हैं।

बन्दी—जब यह राजा शकुनि शत्रुओं पर चढ़ाई करता है तब उसकी सेना से सारी पृथ्वी धूलि रूप में आकाश व समुद्र में फेंक दी जाती है तथा उस धूलिचक्र में दिग्गज, शेषनाग, शेषशायी क्षीरसागरस्थ विष्णु भगवान्, तथा कच्छप यह सब ढक जाते हैं मानों यह सब मिलकर पृथ्वी के भार को उस समय सँभालते हैं अन्यथा पृथ्वी निराश्रित होकर नष्ट हो जाय, यह भाव है ॥ ४४ ॥

(मन में)

जो धनुष शकुनि ने द्रौपदी के स्वयंवर के समय उठाया था वह उनके परिहास का कारण बन गया तथा उनकी ग्रीवा तक पहुँच कर ही रह गया एवं आगे हिलना कठिन हो गया ॥ ४५ ॥

(पुनरवलोक्य विहस्य च) कथम्, विमुक्तराधावेधाभिमानस्य स्वयंवरविदुत्तीर्णं स्कन्धाद्धनुः।

(सर्वे परिक्रामितकेन)

बन्दी—

सिन्धुयन्त्रितयात्रोऽयं सिन्धुराजो जयद्रथः।
सिन्धुपानोत्तमहयः सिन्धुरप्रतिमो बली ॥ ४६ ॥

अस्यासकृद्दलितदाडिमबीजलौल्या-
न्मुक्ताफलेषु करिणां रुधिरारुणेषु।
व्योम्नः शुकान्निपततस्तरसा निरीक्ष्य
नाकस्त्रियो बहु हसन्ति सहस्ततालम् ॥ ४७ ॥

द्रौपदी—जो दुज्जोहणबहिणीवदी। (यो दुर्योधनभगिनीपतिः)

बन्दी—कथम्। धनुरारोपणं प्रत्ययमुदास्ते।

(फिर देखकर तथा हंसकर) ओहो ! जो धनुष यह जानकर कि इनका राधा वेध करने का अभिमान चूर हो गया है स्वयंवर के रहस्य जानने वाले व्यक्ति के समान शकुनि के कन्धे से भी उतर आया (अर्थात् उसने धनुष जमीन पर रख दिया)।

(सब घूमते हैं)

बन्दी—इस राजा सिन्धुराज जयद्रथ के आक्रमण से रुक गये अर्थात् इसने समुद्र पर्यन्त भूमण्डल को जीत लिया है। तथा जिसके घोड़े सैन्धवसिन्धु देश में उत्पन्न हुए तथा समुद्र का जल पान करने से बड़ी श्रेष्ठ जाति के हैं। ऐसा यह हाथी के समान बलिष्ठ जयद्रथ सामने बैठा है ॥ ४६ ॥

राजा जयद्रथ के द्वारा आहत मत्त मातङ्गों के मस्तकों से निकले रक्त से सने मोतियों को देखकर जब उन्हें, पकने के कारण टूटे अनार के दाने समझकर आकाश से उड़ते हुये तोते नीचे गिराते हैं। तब देवस्त्रियां (उनकी मूर्खता पर) ताली मार-मार कर हँसती हैं ॥ ४७ ॥

द्रौपदी—क्या ये ही दुर्योधन की बहिन के भर्ता हैं ?

बन्दी—क्यों ? यह क्या बात है जो कि ये धनुष चढ़ाने में अरुचि दिखा

दुःशलागुणगणेन रञ्जितो लज्जितश्च कुरुराजसन्निधौ ।
कौतुकागमनमात्मनो विदन् स्वासनाच्चलति नो जयद्रथः ॥ ४८ ॥

(सर्वे परिक्रामितकेन)

बन्दी—

दुर्योधनो नृपकिरीटविटङ्करत्नरश्मिच्छटाच्छुरितपादयुगाङ्गुलीकः ।
हेलाचलच्चमरनर्तितकर्णपूरः शूरः शरासनविदां प्रथमोऽयमास्ते ॥४९॥

अपि च—

पादौ वाससि सान्द्रकुङ्कुमरसन्यासप्रसक्ताकृति-
जातौ दिग्विजयेन यैः प्रणयितां नीतः प्रणामाञ्जलेः ।
ते प्रत्यग्रकपालपात्ररुचिभिस्ताराऽस्थिहाराथिभिः
कङ्कालं नवमीप्सुभिः प्रमुदितैः कापालिकैर्वीक्षिताः ॥ ५० ॥

द्रौपदी—जो खण्डपरसुचूडामणिणा कुलालङ्करणं । (यः खण्डपरशुचूडामणेः कुलालङ्करणम्)

रहे हैं । ठीक ! दुःशला (जयद्रथ की स्त्री) के गुण के गणों में अनुरक्त एवं दुर्योधन के सामने सकुचित होने वाला जयद्रथ, केवल कौतुक के कारण ही अपना आना वतलाता हुआ अपने आसन से नहीं उठा रहा है ॥ ४८ ॥

(सब दूसरा ओर जाते हैं)

बन्दी—यह दुर्योधन जी बैठे हैं—जिनके चरणों की अङ्गुलियाँ राजाओं के मौलिमुकुट के रत्नों की किरणों से व्याप्त हो रही हैं, तथा चामर की हवा से जिनका कर्णफूल (कान का भूषण) हिल रहा है तथा जो धनुर्वेत्ताओं में अग्रणी हैं ॥ ४९ ॥

और भी—

जिन लोगों ने कुङ्कुम-रस में सने प्रतिपक्षी राजाओं के चरणों के कपड़ों पर लगे प्रतिबिम्बों को प्रणाम किया था उन लोगों के सिर की खोपड़ी के खप्पर की इच्छा वाले तथा चमकदार सफेद हड्डियों की माला पहिनने के अभिलाषी एवं कङ्काल को चाहने वाले कापालिकों ने उन्हें बड़े प्रेम से देखना आरम्भ कर दिया है, अर्थात् उनकी मृत्यु निकट आ गई है ॥ ५० ॥

द्रौपदी—जो कि चन्द्रवंशी हैं ।

सखी—आम सहि । सो ज्जेव्व एसो । (आम् सखि ! स एव एषः)

द्रौपदी—अत्थि एव्वं । किं पुणो षमुद्दीविदजदुभवणत्तणेण विसास-णदाणत्तणेण अ छलप्पहारी एसो । (अस्त्येवम् । किं पुनः समुद्दीपितजतुभंवनत्वेन विषासनदानत्वेन च छलप्रहारी एषः)

बन्दी—किमाह महाराजदुर्योधनः ।

निर्विशन्तु निजबाहुविक्रमं शार्ङ्गनाम्नि धनुषीह पार्थिवाः ।
साभिमानहृदयस्तु मादृशः कः पणेन परिणेतुमिच्छति ॥ ५१ ॥

(विचिन्त्य स्वगतम्) कथम् । अभिमानाङ्गीकरणेन परिहार एषः ।
(परिक्रामितकेन) एषः स भगवतो वासुदेवस्यापि वन्दनीयो बलभद्रः ।

(प्रकाशम्)

किं किं किं चुचुचुम्बनैर्मुमुमुधावक्त्राम्बुजस्याग्रतो
दे दे देहि पिपिप्रिये सुसुसुरां पात्रेऽत्र रे रेवति ।
मा मा मा बिविलम्बनं कुकुकुरु प्रेम्णा हली याचते
यस्येत्थं मदघूर्णितस्य तरसा वाचः स्खलन्त्याकुलाः ॥ ५२ ॥

सखी—हाँ वही यह हैं ।

द्रौपदी—हाँ यदि यह ऐसे ही पराक्रमी हैं तो इन्होंने लाक्षागृहदाह तथा विष देने के द्वारा पाण्डवों पर छल से प्रहार क्यों किया था ।

बन्दी—सुनिए ! देखिए महाराजा दुर्योधन क्या कह रहे हैं :—

भले ही ये सब राजा लोग इस विष्णु के धनुष पर अपना-अपना बाहुबल दिखलावें । पर मुझ जैसा आत्माभिमानी शर्त लगाकर विवाह करना कब पसन्द कर सकता है ॥ ५१ ॥

(सोचकर मन ही मन) इस प्रकार आत्मसम्मान प्रकट करना स्वयंवर से दूर भागने का एक अनोखा ढंग है ।

(घूमकर) यह तो भगवान् श्रीकृष्ण के भी पूज्य बलदेव जी हैं ।

(स्पष्ट रूप से)

जिन बलदेव जी की वाणी शराब के प्रभाव से लड़खड़ाती यों निकल रही है कि अब चु चु चु चुम्बन का क्या प्रयोजन, मेरे मु मु मुख के सामने हे प्रिये रे रे

अपि च

नीलांशुकं नलिनदाम च यस्य भूषा,
यत्कीर्तिकारि मधुरं मधु, रेवती च।
लीलासु धृष्टधनुरत्र हली सहेलम्,
शारैः स एष खलु खेलति खेलगामी ॥ ५३ ॥

द्रौपदी—जो किल एरावणवारणो विअ सदामदो सदा सच्छन्दो अ।
(यः किल ऐरावणवारण इव सदामदः सदा स्वच्छन्दश्च)

बन्दी—किमाह कामपालः।

रेवतीं त्रिभुवनैकसुन्दरीं न प्रकोपयति रोहिणीसुतः।
तेन नैष विदधाति कौतुकी दृग्विभागमपि कृष्णकार्मुके ॥ ५४ ॥

पुनर्बन्दी—

यः पीयूषभुजां पुरः प्रहरतां दम्भोलिपाणिं रणे
निर्जित्योर्जितशार्ङ्गनिर्गतशरश्रेणीभिरुद्दामभिः ।

र्वात सु सुरा को दो। हे प्रिये! दे दे देरी म म मत करो, क्योंकि मैं बलराम तुमसे प्रे प्रे प्रेमपूर्वक, माँग रहा है ॥ ५२ ॥

और भी—

जिसका भूषण नीला वस्त्र और नीले कमलों की माला है, जिसका नाम रेवती के साथ रहने तथा शराब उड़ाने में प्रसिद्ध है। जो कभी-कभी मौज में धनुष चला लेते हैं, प्रायः हल ही जिनका आभूषण है, तथा जिनकी चाल मस्त है, वे श्री बलराम जी यहाँ भी जूआ ही खेल रहे हैं ॥ ५३ ॥

द्रौपदी— जो कि ऐरावत हाथी की तरह सदा मत्त तथा स्वच्छन्द है।

बन्दी—कामपाल ने क्या कहा[1] ?

तीनों भुवनों में एकमात्र सुन्दरी रेवती को क्रोधित नहीं करता। अतएव (दो स्त्रियों के आने से रेवती नाराज न हो जाय) कृष्ण के धनुष की ओर दृष्टि भी नहीं करते ॥ ५४ ॥

बन्दी फिर कहता है—

जिसने अमृत भक्षण करने वाले देवताओं के देखते हुए, प्रहार करते हुए

---

१. यह एक बन्दी का नाम है।

सत्यावाञ्छितमौलिबन्धरचनैः पुष्पैः सदा सुन्दरां-
श्चक्रे नन्दनपारिजातकतरून् विश्वम्भरासाक्षिणः ॥ ५५ ॥
वृषतुरगकरीन्द्रस्यन्दनाद्याकृतीनां
किमपरमसुराणां मन्थिता सोऽयमास्ते ।
कृतसुरपतितोषः षोडशस्त्रीसहस्र-
प्रणिहितपरिरम्भस्यास्पदं पद्मनाभः ॥ ५६ ॥

जस्स किल कलअण्ठी मञ्जुजम्पिनी रुक्किणी पढमकलत्रं जस्स कञ्च णमाला सत्यभामा प्रमदावणं हिअअस्स ! (यस्य किल कलकण्ठी मञ्जुजल्पिनी रुक्मिणी प्रथमकलत्रं, यस्य काञ्चनमाला सत्यभामा प्रमदाऽवनं हृदयस्य ।)

बन्दी—किमाह देवो वासुदेवः ।

यस्मिन् मदस्य मदनस्य च भूर्ममार्यो
यस्मिन्नमी च यदुवंशभुवः कुमाराः ।
नन्वत्र सोऽहममुना कमलावतारः
स्त्रीचक्रकेलिचतुरश्चरितेन लज्जे ॥ ५७ ॥

भी उनको तथा इन्द्र को शार्ङ्ग नामक धनुष से वाण वर्षा करके जीत लिया एवं सत्यभामा की वेणी के बन्धन के लिये अभीष्ट नन्दन के पारिजात के वृक्षों को पृथ्वी पर लाकर आरोपित कर दिया[1] ॥ ५५ ॥

जिसने बैल (धेनुका सुर) घोड़े शकटासुर, कुवलयापीड (करीन्द्र) आदि भिन्न-भिन्न आकृतियों को बनाकर, सताने वाले असुरों का दमन कर दिया था वह सोलह सहस्र स्त्रियों के स्पर्श सुख वाले श्रीकृष्ण भगवान् सामने ही विद्यमान हैं ॥ ५६ ॥

जिनजी मञ्जुभाषिणी रुक्मिणी पहली स्त्री है तथा सोने की तगड़ी पहिनने वाली सत्यभामा जिसके हृदय का विश्रामस्थान है, (अतिवल्लभा है) ।

बन्दी—कृष्ण भगवान् क्या कहते हैं—

जिस स्त्रीरत्न के विषय में मेरे बड़े भाई बलराम मद तथा मदन के शिकार बने हुए हैं, एवं जिसके विषय में ये यदुवंशी कुमार उन्मत्त रहे हैं, कमला का

---

१. "पारिजातहरण चम्पू" पढ़िए ।

(परिक्रामितकेन बन्दी)

वल्गच्चाणूरचूर्णीकरणसहभुवः पूतनाफूत्कृतीनाम्
कर्तारः कंसवंशप्रशमपरशवः केशिनः क्लेशकाराः ।
यस्यासन् मानदर्पप्रबल कुवलयापीडपीडाप्रगल्भाः
क्रीडाडिम्भस्थलीलोद्धृतधरणिधराः केलयः कालियारेः ॥ ५८ ॥

तस्यैष शम्बरमहासुरसुन्दरीणाम्
सिन्दूरमण्डनहरेण पराक्रमेण ।
शश्वत्प्रकामकमनीयजनोपमानम्
प्रत्यक्षपञ्चविशिखस्तनयः पुरस्तात् ॥ ५९ ॥

द्रौपदी—जो किल जाअवकुमाराणं मज्झे णिरुवमरूवरेहाजअपडाअं

प्रीतिपात्र एवं ललनावृन्द के साथ आमोद-प्रमोद करने वाला मैं उसकी चर्चा करके भी लज्जा का अनुभव करता हूँ ॥ ५७ ॥

(बन्दी घूमकर)

बाललीला संलग्न श्रीकृष्ण की क्रीडा—चाणूर जैसे पहलवान की फड़कती हड्डियों को चूर-चूर करने वाली, पूतना को मारने वाली, कंस के वंश का नाश करने वाली, केशी राक्षस को क्लेश देने वाली, अभिमान और दर्प से भरे कुवलयापीड का पीडित करने वाली एवं पहाड़ (गोवर्द्धन) आदि को उठाने वालीं जगत् प्रसिद्ध हैं ॥ ५८ ॥

इन श्रीकृष्ण भगवान् के पुत्र कामदेव सामने खड़े हैं, जिन्होंने शम्बर दैत्य की सुन्दरियों के मस्तक से सिन्दूर का मण्डन दूर कर दिया है तथा जो संसार में उत्पन्न सुन्दर मनुष्यों के लिये एकमात्र उपमान कहे जाते हैं ॥ ५९ ॥

द्रौपदी—जो यादवकुमारों में अनुपम सौन्दर्यशाली है ।

---

१. यहाँ मूल में 'क्रीडाडिम्वस्थ' ऐसा पाठ है—कोश के देखने से डिम्ब के अनेक अर्थ हैं जैसे—"डिम्बो भयध्वनावण्डे फुफ्फुसे प्लीह्नि विप्लवे" इनमें से एक भी अर्थ फिट नहीं बैठता । अतः मैंने "क्रीडाडिम्बस्थ" यह पाठ उचित समझा है ।

अविलम्बं अवलम्बेदि । (यः किल यादवकुमाराणां मध्ये निरुपमरूपरेखाजय-पताकामविलम्बमवलम्बते ।)

बन्दी—आर्यधृष्टद्युम्नः ।

उद्यतः क्रतुकृशानुजन्मनः कर्तुमेष धनुषोऽधिरोपणम् ।
शार्ङ्गिणा भगवता ससंभ्रमं भ्रूविटङ्कघटनेन वार्यते ॥ ६० ॥

(परिक्रामितकेन)

धनुर्विद्यारहस्येषु शिष्योऽयं सव्यसाचिनः ।
प्रद्युम्नस्य सहाध्यायी सात्यकिः सत्यसंगरः ॥ ६१ ॥

अपि च—

यः सत्यस्य निधिः श्रियां च सरणिः साम्नां च धाम्नां चयो
यो दाता च दयालुरेव च पदं कीर्तेश्च नीतेश्च यः ।
तस्यैतस्य स एष दूषणकणः कारुण्य पुण्यात्मनः ।
पात्रापात्रविवेचनं न यदभूत्सर्वस्वदानेष्वपि ॥ ६२ ॥

बन्दी—आर्य ! घृष्टद्युम्न !

वही मदन अब यज्ञाग्नि से उत्पन्न हुई द्रौपदी की प्राप्ति के धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाने के लिये खड़ा होने को तैयार ही था कि श्रीकृष्ण भगवान् ने भौंहें टेढ़ी करके उसे मना कर दिया ॥ ६० ॥

(घूमकर)

यह सामने धनुर्विद्या के रहस्य ज्ञान में अर्जुन का शिष्य प्रद्युम्न का सहाध्यायी सत्यप्रतिज्ञ सात्यकि हैं ॥ ६१ ॥

और भी—

जो सत्य का भण्डार है, लक्ष्मी का सागर है, शक्ति व प्रताप का राजमार्ग है, जो दाता है, दयालु है, कीर्ति तथा नीति का स्थान है, ऐसे इसका एक यही दोष है कि इस करुणासागर ने दान देते समय यहाँ तक कि सर्वस्व दान तक के समय, भी कौन दान के योग्य पात्र है कौन नहीं, इस प्रकार सुपात्र या कुपात्र का विचार कभी नहीं किया ॥ ६२ ॥

द्रौपदी—जो जाअवकुमारो भविअ अणासादिदकादम्बरीरसो। एदस्स दोसो गुणो वा कीरदु। (यो यादवकुमारो भूत्वा अनासादितकादम्बरीरसः। स एतस्य दोषं गुणं वा कीर्तयतु।)

बन्दी—

याागकुण्डशिखिगर्भसम्भवं बन्धते न तु करेण बध्यते।
इत्युदीर्य चतुरोक्ति-सात्यकिः पूजया परिहरत्ययं धनुः॥ ६३॥

(परिक्रामितकेन)

शिशुपालो महीपालो मेकलानां कुलोद्वहः।
अयं स गजनिर्घोषो दमघोषसुतः परः॥ ६४॥

पाणिप्रस्थैर्बकुलसुमनःसौरभं यो मिमीते
दम्पत्योर्यः सुरतसमये सौख्यसंख्यां करोति।
यश्च ज्योत्स्नां चुलुकपुटकैः काममाचामतीन्दोः
शक्तः स्तोतुं बत स निखिलान्यस्य कीर्त्यद्भुतानि॥ ६५॥

द्रौपदी—जो णिज्जिदसअलसुरासुरो। (यो निर्जितसकलसुरासुरः।)

बन्दी—

दक्षिणं करमुपैति वामतो वाममञ्चति च दक्षिणादिति।

द्रौपदी—जिसने यदुवंश में उत्पन्न होकर भी शराब का रस नहीं चखा, वह सात्यकि के विषय में टीका-टिप्पणी करने का अधिकार रखता है।

यज्ञ की वेदि से उत्पन्न हुआ धनुष मेरे द्वारा वन्द्य ही है वध्य नहीं, यह कहकर बड़ी चतुरता से सात्यकि धनुष का परिहार कर रहा है॥ ६३॥

(घूमकर)

यह दमघोष का पुत्र, मेकल देश का राजा, हाथी के समान गम्भीर ध्वनि वाला राजा शिशुपाल है॥ ६४॥

जो मनुष्य अञ्जलि से नाप-तोल कर सकता है, जो पति-पत्नी के समागम-सुख की इयत्ता कर सकता है—तथा जो चन्द्रमा की चाँदनी को चुल्लू भर कर आचमन कर सकता है, वही इसकी अद्भुत कीर्तियों को गिन सकता है॥ ६५॥

द्रौपदी—जिसने सुर-असुर सब जीत लिए हैं वही ?

बन्दी—दाहिना हाथ वाम ओर जाता है (तूणीर में से बाण निकालते

दूरतोऽस्य नृपतेर्गुणार्पणे धारणेऽपि धनुषो विडम्बना ॥ ६६ ॥

(परिक्रामितकेन)

सत्यसन्धो जरासन्धः क्रान्तदिग्वलयो बलैः ।
अत्रैव राजते राजा मागधो मागधैः स्तुतः ॥ ६७ ॥

अस्यासमं समरकर्म दिदृक्षमाणै-
र्दोषद्वयं फणिभिरापि चमूरजस्तः ।
यत्कूणितेक्षणतया न कबन्धनृत्यं
दृष्टं श्रुता न च महाभटसिंहनादाः ॥ ६८ ॥

द्रौपदी—जो जणणीजणिददेहखण्डणो जराए रक्खसीए सन्धिदो त्ति जरासन्धो वुच्चदि । (यो जननीजनितदेहखण्डनो जरया राक्षस्या सन्धित इति जरासन्ध उच्यते ।)

बन्दी—

अस्य वैष्णवमिदं महाधनुः स्वप्रभावविभवेन भूपतेः ।
अम्बरे भुवि दिशां च सञ्चये दर्शयत्यतनुकार्मुकावलीः ॥६९ ॥

समय) तथा वाम दाहिनी ओर जाता है अतः इस राजा की प्रत्यञ्चा चढ़ाने की कौन कहे—धनुष रखने में भी तिरस्कार है ॥ ६६ ॥

(घूमकर)

यह मगध देश का राजा जरासन्ध है जिसकी सेनाओं से दिशाएं व्याप्त हैं ॥ ६७ ॥

इस राजा के अद्भुत समर को देखने की इच्छावाले सर्पों ने इसके सैन्य की धूलि के उड़ने से उत्पन्न हुयी दो हानियाँ प्राप्त कर लीं—एक तो यह कि कबन्ध का समराङ्गण में नाच नहीं देखा गया, दूसरे महाभटों का सिंहनाद नहीं सुना गया । क्योंकि सर्प चक्षुःश्रवा होते हैं ॥ ६८ ॥

द्रौपदी—जिसे माता से देह के टुकड़े करने पर जरानामकी राक्षसी ने जोड़ा था अतएव जिसका जरासन्ध नाम पड़ा था ।

बन्दी—इस राजा जरासन्ध के लिये वैष्णव धनुष अपने प्रभाव से आकाश में, पृथ्वीपर, दिशाओं में अनेकों बड़े-बड़े धनुष दिखा रहा है अतः वह किसे-किसे यह दिङ्मोह हो रहा है ॥ ६९ ॥

(परिक्रामितकेन) कथम्। एते राजानो युगपदुपस्थिताश्चापमारोपयितुं विडम्बिताश्च । तथा हि—

जातं कीकससङ्गतः शकपतेर्दोर्दण्डयोः खण्डनं,
निष्ठ्यूता रमठेश्वरेण वदनात् कीलालकल्लोलिनी ।
जानुभ्यां जगतीं गतश्च तरसा पाण्ड्यः प्रचण्डोऽप्ययं,
कोदण्डेन न खण्डिताः क्षितिभुजो दामोदरीयेण के ॥७०॥

(सविषादम्)

धिङ्मन्त्रं शकुनेः कुलक्षयकरं दुर्योधनं धिङ्नृपं
धिग् भीष्मं च पितामहं गुरुमपि द्रोणं सपुत्रं च धिक् ।
यद्दग्धा जतुधाम्नि पाण्डुतनया जीवेत्स चेदर्जुनो
राधायन्त्रमविद्धमत्र न भवेत् कन्या न च द्रौपदी ॥ ७१ ॥

(अर्जुन आरोपयति)

धृष्टद्युम्नः—

वैकुण्ठकार्मुकहठाहरणैककण्ठे दोर्दण्डमण्डलविखण्डितराजचक्रे ।
द्राग् द्रौपदी नमितकण्ठविलोठिहारवश्लिष्ट्यग्रिगणनां गुणिनां करोति ॥

(घूमकर) ओहो ! ये राजा लोग सब मिलकर बाण चढ़ाने आए, तिरस्कृत हो गये तथाहि—

शकाधिप की बाहुओं की हड्डी टूट गई, रमठ देश के राजा ने मुँह से खून उगल दिया। यह प्रचण्ड पाण्डु देश का राजा घुटनों के बल आ गिरा, इस प्रकार किन राजाओं की विष्णु भगवान् के चाप ने मानहीन नहीं बना दिया ॥ ७० ॥

(दुःख-सहित)

राजा शकुनि की सलाह को धिक्कार है, राजा दुर्योधन को भी धिक्कार है, पितामह भीष्म को धिक्कार है, अश्वत्थामा सहित द्रोणाचार्य को धिक्कार है, जो कि लाक्षागृह-दाह के समय सब पाण्डव जला दिये । यदि अर्जुन होता तो राधारूपी लक्ष्य अविद्ध न होता तथा द्रौपदी भी कन्या न रहती वधू हो जाती ॥७१॥

(अर्जुन धनुष चढ़ाता है)

धृष्टद्युम्न—विष्णु भगवान् के कार्मुक को जबरदस्ती चढ़ाने की एकमात्र

सखी—किं पुण एसो भरिदभुवणकोलाहलकलअल। (किं पुनरेष भरितभुवनकोलाहलः कलकलः।)

बन्दी—(अवलोक्य सहर्षम्)

धृष्टद्युम्ने विषण्णे हसति मुरजिति द्रौपदीचित्तनिघ्ने
कोदण्डप्रौढिगाढग्लपितगुरुबले चात्र राज्ञां समाजे।
प्रेङ्खत्कृष्णाजिनानां करकटकजुषां वल्कलव्याकुलानां
विप्राणां कोऽपि मध्यादवतरति युवा कार्मुके दत्तदृष्टिः॥ ७३॥

अपि च—

व्रीडानतेषु वदनेषु च भूपतीनां
सञ्चारयन् विकचपङ्कजचारु चक्षुः।
अभ्येति मत्तगजखेलगतिः स एष-
साभ्यर्थनं मुनिजनेन निषिध्यमानः॥ ७४॥

अर्जुनः—(कतिचित्पदानि गत्वा चतुर्दिशमवलोक्य)

इच्छावाले, बाहुदण्ड के बल का खण्डन करनेवाले राजसमुदाय में द्रौपदी सिर झुकाकर जिस हार की लड़ी हिला रही है ऐसे हार के दानों से गुणियों की गणना कर रही है॥ ७२॥

सखी—यह संसार के अन्दर व्याप्त होनेवाला क्या हल्लागुल्ला है।

बन्दी—(देखकर हर्ष-सहित)

धृष्टद्युम्न के दुःखित होने पर, हँसते हुए श्रीकृष्ण भगवान् के, द्रौपदी के चित्त के अधीन होने पर, चाप की गुरुता के कारण राजसमाज के बल के नष्ट हो जाने पर, कृष्णाजिन लटकाए हुए, कमण्डलुपाणि, वल्कलधारी ब्राह्मणों में से कोई युवा धनुष पर दृष्टि लगाये मैदान में उतर रहा है॥ ७३॥

और भी—

राजाओं के शर्म से नीचे मुँह कर लेने पर, खिले हुए कमल के समान सुन्दर चक्षु को चारों ओर डालता हुआ, मत्त हस्ती के समान चालवाला प्रार्थनापूर्वक मुनियों से निषेध करने पर भी वह युवा बढ़ा चला आ रहा है॥ ७४॥

अर्जुन—(कुछ चलकर चारों ओर देखकर)

एतत्कृष्णस्य शार्ङ्गं ननु धनुरतनु प्राणदोर्दण्डचण्डै-
र्दूराद्भूपप्रकाण्डैः सपदि परिहृतं शिञ्जिनीसंयतेषु ।
मध्ये राज्ञां प्रतिज्ञा मम पुनरियती मे भुजायन्त्रयोगे,
प्रत्येकं पर्वमुद्रा त्रुटति तडिति वा जायते कार्मुकं वा ॥ ७५ ॥

(सरभसं परिक्रम्य धनुरारोपणं नाटयन्)

मद्बाहुयन्त्रयुगयन्त्रितमाततज्यं
न स्याद्धनुः कथमिदं हि रथाङ्गपाणेः ।
तुन्नाटनिर्यदि न याति च भूमिपृष्ठ-
मा शेषमा च कमठाधिपमभ्युपेयात् ॥ ७६ ॥

भीमः—वत्स नकुल ! भिदुरा भूमिरिति मा कदाचन कदर्थितको-दण्डरत्नकोटिः स्यात् किरीटी तत्तस्याधस्ताद्धस्तं दाढ्याय निदधो ।

(इति तथा करोति)

नकुलः—

धत्से जर्जरतां न मेदिनि ! मुधा मा शेष ! शङ्कां कृथा-
स्तुभ्यं कूर्मपते नमस्त्यज भियं दिक्कुञ्जराः स्वस्ति वः ।

यह विष्णु का धनुष बड़े बलशाली विशालभुजाओं वाले राजाओं ने प्रत्यञ्चा पर जिस किसी तरह बाण चढ़ा कर छोड़ दिया। राजाओं के मध्य में मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मेरी भुजा के सम्पर्क होने पर प्रत्येक पर्व से धनुष टूट जायगा— या पूरा ही धनुष टूट जायगा ॥ ७५ ॥

(जल्दी से घूमता हुआ व धनुष चढ़ाता हुआ)

मेरे बाहुयुगल के यन्त्र में फँसा हुआ यह धनुष प्रत्यञ्चारूढ, क्यों न होगा। जमीन में घुसी हुयी अटनि (धनुष का सिरा) वाला दो भुग्न सिरेवाला यह धनुष यदि पृथ्वी के तल पर न रुकेगा तो फिर शेषनाग के फणामण्डल या कच्छप की पीठ तक पहुँचेगा ॥ ७६ ॥

भीम—भाई नकुल ! जमीन जल्दी फट जायगी अतः कदाचित् चाप की कोटि जमीन पर न जमें अतः मैं अटनि के नीचे हाथ लगाये देता हूँ।

(वैसा ही करता है)

नकुल—हे पृथ्वि ! तू टूटने का भय मत कर। हे शेष ! तू भी व्यर्थ शङ्का

यज्जिष्णुर्भुजयोर्बलेन नयति ज्याहेलयैवाटनीं-
धत्ते पाणितलं तलेऽस्य धनुषो वामं हिडिम्बापतिः ॥ ७७ ॥

(अर्जुन आरोपयति)

सखी—भअवदि ! मिधुणसंघट्टणेक्कदेवदे कुण्ठिदे णीसेसणरेन्द्रचक्के एक्कमेक्कविप्पवीरसमुज्जमसेसं वट्टदि सअंवरविडम्बणं । (अर्जुनः बाण-मोक्षं नाटयति) (भगवति ! मिथुनसंघटनैकदेवते ! कुण्ठिते निःशेषनरेन्द्रचक्रे एकमेकविप्रवीरसमुद्यमशेषं वर्तते स्वयम्बरविडम्बनम् ।)

आकर्णाञ्चितचापमण्डलमुचा बाणेन यन्त्रोदर-
च्छिद्रोत्सङ्गविनिर्गतेन तरसा विद्धा च राधाऽमुना ।

(द्रौपदीमवलोक्य)

तुल्यं शोषण-मोहन-प्रभृतयः प्रक्षेपकुण्ठक्रमाः
कामेन द्रुपदात्मजा हृदि हठान्न्यस्ताः स्वयं चेषवः ॥ ७८ ॥

सखी—अच्छरीअं अच्छरीअं । असलिलकुवलअकुसुमं विअ कुसुम-कोदण्डतिग्गक्खेवणमोहणोदअं इन्दआलं । से दिट्ठी विप्पवीरवदणे णिवडन्तीण विरमदि । (आश्चर्यमाश्चर्यम्) (असलिलकुवलयकुसुममिव

मत कर । हे कच्छपराज ! तुम्हें भी नमस्कार है। हे दिग्गजो ! तुम्हारा कल्याण हो । क्योंकि आज अर्जुन भुजाओं के ही बल से लीलापूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ा रहा है, तथा इस अटनि के नीचे भीम ने अपनी हथेली लगा दी है ॥ ७७ ॥

(अर्जुन धनुष चढ़ाता है)

सखी—हे भगवति द्रौपदि ! मिथुन (विवाह) संघटन के लिये समुपस्थित सब राजाओं के हार जाने पर एकमात्र एक ब्राह्मण ही अब स्वयंवरेच्छुक है ।

(अर्जुन बाण छोड़ता है)

कानतक खींच कर बाण छोड़नेवाले उसने बड़ी जल्दी से राधा बींध दी ।

(द्रौपदीको देखकर)

तथा साथ ही साथ कामदेव ने द्रौपदी के हृदय में जबरदस्ती शोषण-मोहन आदि बाणों को चुभो दिया ॥ ७८ ॥

सखी—बड़े आश्चर्य की बात है, बिना जल के कमल की तरह (बिना

कुसुमकोदण्डतिर्यक्क्षेपणमोहनोद्गतमिन्द्रजालम् । तस्याः दृष्टिर्विप्रवीरवदने निपतन्ती न विरमति ।)

अर्जुनः—

कथम् । राधावेधानन्तरमियमस्मासु स्निह्यति । यतः—

जैत्रं तन्त्रं कुसुमधनुषः प्रेमसर्वस्वदूताः-
सत्यङ्काराः प्रणयविततेस्तुष्टये मुष्टियोगाः ।
विन्यस्यन्तः श्रवसि सुतनोर्मेचिकाम्भोजभूषा-
मुत्कण्ठन्ते मयि निपतितुं नर्तिताक्षाः कटाक्षाः ॥ ७९ ॥

बन्दी—हा ! हा ! धिक् कष्टम् ।

ध्रुवमिदमुपदिष्टं कैश्चिदाचार्यपादै-
र्यदुत जनकशोकस्यैकहेतुः कुमारी ।
अकलितकुलशीलोऽप्येष यत्कोऽपि धन्वी
द्रुपददुहितुरस्या वाञ्छति स्वामिभावम् ॥ ८० ॥

अर्जुनः—हे हो बन्दिवृन्दारक ! किमत्र कुलान्वषणेन, किं वा शीलपर्यालोचनया । धनुरारोपणमात्रपरिणेया द्रौपदी ।

करण के) कामदेव के तीक्ष्ण वाणों ने अद्भुत इन्द्रजाल कर दिया है । इसीलिये द्रौपदी की दृष्टि इस विप्रवीर के मुख पर टकटकी लगाये हुए है ।

अर्जुन—अरे ! राधावेध के बाद यह हमसे प्रेम करने लगी । क्योंकि:—कामदेव के विजयी राज्य के समान, प्रेमसर्वस्वभूत, प्रेम की वृद्धि के लिये शपथभूत, सन्तुष्टि की वृद्धि के लिये मूंठ मारने के समान इस सुतनु के कानों पर नील कमल की शोभा को करनेवाले कटाक्ष मुझ पर गिरना चाह रहे हैं ॥७९॥

बन्दी—बड़ा दुःख है ।

यह बात ठीक कही थी कि जनक को दुःख देनेवाली एक मात्र कन्या थी । जो कि यह कुमार जिसके कुल स्वभाव आदि का कुछ भी परिज्ञान नहीं, वह द्रौपदी का पति बनना चाहता है ॥ ८० ॥

अर्जुन—अरे ! बन्दियों में श्रेष्ठ ! कुल और शील की खोज से क्या मतलब, क्योंकि द्रौपदी के विवाह में केवल धनुष चढ़ाने की ही शर्त थी ।

(नेपथ्ये)

हे हो महाब्राह्मणास्त्वामेवं नृपतयः समुदिताः भाषन्ते ।
सायकश्च त्वया मुक्तो यन्त्रं वातेन चाहतम् ।
तन्मा वृथा विकत्थस्व न राधां विद्धवानसि ॥ ८१ ॥

(पुनः साक्षेपम्)

रे रे ब्राह्मण ! मुञ्च विप्लवमिमं श्रुत्यर्थवीथीं स्मर
क्षत्रस्याथ ननु स्वयंवरविधावेकाधिकारः स्थितः ।
तच्चेन्नाद्रियसे स्मरार्द्रहृदयो दण्डस्त्वमुर्वीभुजां,
तत्संकर्षणकार्मुकं समुदिता नैते क्षमन्ते नृपाः ॥ ८२ ॥

(अर्जुनः तान् प्रति)

कस्य द्रोणो धनुषि न गुरुः स्वस्ति देवव्रताय
त्यक्ताभ्यासः कुलपतिरसौ श्रीसमर्थैर्विलासैः ।
रे कर्णाद्याः शृणुत तदिमां ब्राह्मणस्यास्य वाणीं
राधायन्त्रे रचयत पुनर्विद्धमप्यस्त्वविद्धम् ॥ ८३ ॥

(नेपथ्य में)

अरे ! ब्राह्मण ! तुझसे सब राजा लोग यह कह रहे हैं कि—तुमने वाण छोड़ा तथा वायु से राधा हिली, अतः तू राधावेध की व्यर्थं श्लाघा या अभिमान मत कर ॥ ८१ ॥

(फिर आक्षेप-सहित)

अरे ! ब्राह्मण ! इस मर्यादातिक्रमण को छोड़ दे, वेदोक्त मार्ग को याद कर ले। क्योंकि एकमात्र क्षत्रिय का ही स्वयंवर में अधिकार है। यदि तू इस नियम की कामवशीभूत होने के कारण परवाह नहीं कर रहा है तो सब राजा लोग मिलकर तुझे दण्ड देंगे क्योंकि विष्णु-कोदण्ड उठाना यह नृपति-चक्र सहन नहीं कर सकता ॥ ८२ ॥

(अर्जुन उनके प्रति)

हे कर्णप्रभृति मनुष्यो ! द्रोण धनुर्विद्या में किसका गुरु नहीं अर्थात् सबका गुरु है। भीष्म जी का भला हो क्योंकि उन्होंने दुर्योधन से उपलब्ध श्री के विलासों के कारण धर्मुविद्या का अभ्यास छोड़ दिया है। अतः आप लोग मुझ

सखी—सहि इदो तरलिदतारहारअणेक्कसंमुक्कमुत्तं उच्चण्डचित्तचण्डिमाकण्णञ्चिदकोदण्डमण्डलं आलिहिदभिण्डिवालं आहिदसंघट्टपट्टिसं संकुलकेसभूसणालङ्किदकङ्कणअं च समन्तदो समुत्थरिदि विन्दं णरेन्दाणं। (सखि ! इतस्तरलिततारहारकनैकसंमुक्तमुक्तम्, उच्चण्डचित्तचण्डिमाकर्णाञ्चितकोदण्डमण्डलम्, आलिखितभिन्दिपालम्, आदितंसंघट्टपट्टिशं, सकुलकेशभूषणालङ्कृतकङ्कणकञ्च समन्ततः समुत्तिष्ठते वृन्दं नरेन्द्राणाम् ।)

बन्दी—

संघट्टोत्पिष्टचूडाच्युतमणिकणिकाकर्बुरैर्बाहुदण्डै-
स्तूणोत्कर्णास्रदण्डाः क्षितिपतय इमे सर्वतः संरभन्ते ।
अप्रेक्षित्वा विलोलां द्रुपददुहितरं विद्धराधाशरव्यम्
बाणं कोदण्डदण्डे विदधदयमितो वर्तते विप्रवीरः ॥ ८४ ॥

(नेपथ्ये)

देवस्य द्युमणेः कुले नृपतयो ये ये च चूडामणेः
श्रीकण्ठस्य निवेदयामि तदिदं तेषां द्वयेषामपि ।

ब्राह्मण की वाणी को ध्यान से सुनें। राधा के विद्ध होने पर भी बिना बींधी ही रही तुम उसे दुबारा टाँग दो। उसे फिर बींधा जायगा ॥ ८३ ॥

सखी—इधर अनेक तारहारों के टूटने से, टपकते मोतियों से युक्त, प्रचण्ड क्रोध से आकृष्ट धनुर्गुणवाला, गोफियों से सजा हुआ, परशुजाल से सुसज्जित, उलटे-सुलटे केश-भूषणवाला तथा कङ्कण भूषणवाला नरेन्द्रों का चक्र चारों तरफ से युद्ध के लिये उठ रहा है।

बन्दी—टकराने से मस्तक-मणियाँ चूर-चूर होकर भुजाओं पर बिखर गयीं, तूणीर की रगड़ से खून के फव्वारे छूट रहे हैं, ऐसे राजा लोग लड़ने को उतारू हैं। चञ्चलाक्षी द्रौपदी की परवाह न करके विप्रवीर धनुष पर बाण चढ़ाता हुआ इधर आ रहा है ॥ ८४ ॥

(नेपथ्य में)

सूर्यवंश तथा चन्द्रचूड के भूषणभूत चन्द्र के वंश में जितने भी राजा लोग

विप्रश्चीवरवान् सहायरहितः कोऽप्येष वः पश्यतां
राधावेधकरो हठेन हरते कीर्त्या समं द्रौपदीम् ॥ ८५ ॥

भीमः—वत्स धनञ्जय ! त्वं कराकलितद्रौपदीक एव मामनुवर्तस्व । अहं राजचक्रस्य पुरतो भवामि । (तथा भवति)

नकुलः—आर्य ! इमं तालतरुमायुधीकुरु । (भीमस्तथा करोति)

बन्दी— उत्पाटितमहातालकल्पतचण्डगदाधरः ।
विप्रवीरो द्वितीयोऽपि पार्थिवानां पुरः स्थितः ॥८६॥

(राजलोकमवलोक्य)

अर्जुनः—अयमहमिह विप्रः प्रोतराधारहस्य-
स्त्रिभुवनजयमुद्रा द्रौपदी चेयमत्र ।
कलयथ यदि दोष्णश्चापदण्डप्रचण्डां—
स्त्यजत रथगजस्थास्तत्पुरस्योपकण्ठम्[1] ॥ ८७ ॥

यहाँ उपस्थित हैं वे सब सुनें कि यज्ञोपवीतधारी एक ब्राह्मण आपके देखते-देखते द्रौपदी को आपकी कीर्ति के सहित हर के ले जा रहा है ॥ ८५ ॥

भीम—भाई अर्जुन ! तु द्रौपदी को हाथ से ग्रहण किए हुए ही मेरे पीछे-पीछे चले आओ । मैं राजाओं के सामने डटता हूँ ।

(वैसा करता है)

नकुल—भाई भीम ! इस ताल के पेड़ को अपना शस्त्र बना लो । (भीम वैसा करता है ।)

बन्दी—महाताल को उखाड़कर गदा बनाते हुए दूसरा ब्राह्मण (भीम) भी राजाओं से जा भिड़ा ॥ ८६ ॥

अर्जुन (राजाओं को देखकर)

यह मैं ब्राह्मण हूँ, जिसने राधा का वेध किया है, तथा तीनों भुवनों को जीतने की विजयपताका यह द्रौपदी सामने है । यदि आपको चाप-धारण करनेवाले भुजाओं का घमण्ड है तो रथ और हाथियों पर चढ़कर नगर के बाहर होकर मैदान में आकर डटो ॥ ८७ ॥

---

१. हे रथगजस्थाः ! यूयं रथ-गजस्थितिं त्यजतेत्यार्थः सम्बन्धः ।

(बन्दी विचिन्त्य)

वीर्यं वचसि विप्राणां क्षत्रियाणां भुजद्वये ।
इदमत्यन्तमाश्चर्यं भुजवीर्या हि यद् द्विजाः ॥ ८८ ॥

(अर्जुनस्तदेव पठति) (नेपथ्ये)

साधु ब्राह्मण साधु । क्षात्रं मार्गमनुवर्तसे ।

भीमः—यद्येवम् ।

प्रसर्पतु रणाङ्गणे रुधिरकेलिकल्लोलिनी
भवन्तु फलिता इव द्विरदमुण्डपिण्डैर्दिशः ।
नृमांसकवलान्तरेष्वपि च साग्निलेखैर्मुखैः,
कृतान्तजयमङ्गलं विदधतु ध्वनिं फेरवाः ॥ ८९ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(प्रथमोङ्कः समाप्तः)

बन्दी—(सोचकर)

ब्राह्मणों का बल वाणी में होता है, क्षत्रियों का दोनों भुजाओं में यह बात प्रसिद्ध है पर यह आश्चर्य की बात है जो ब्राह्मणों का बल भुजाओं में भी दिखाई दे रहा है ॥ ८८ ॥

(अर्जुन फिर वही 'दिवस्य' इत्यादि ८५ वाँ तथा 'अयमहमिह' ८७ वाँ पद्य पढ़ता है)

(नेपथ्य में)

हे ब्राह्मण ठीक, बहुत ठीक ।

भीम—यदि यह बात है तो—

रणाङ्गण में खून की नदी बहे, हाथियों के कटे सिरों से दिशायें चमक उठें । मनुज-मांस भक्षण के बीच-बीच में अग्नि की लपट निकलने वाले मुखों से यमराज की जयमङ्गल गीति के समान गीदड़ भी अपनी ध्वनि करनी प्रारम्भ कर दें ।८९।

(सब निकल गये)

(प्रथमाङ्क समाप्त)

अथ द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति विदुरः सशरोपकरणश्च पुरुषः)

विदुरः—

आ देवाद्दिव्यपङ्केरुहसदनजुषोऽस्मिन्महाराजवंशे
विष्वक्सेनावताराद् विजयिनि जगतामत्र चित्रप्रसूतेः ।
हे विश्वे लोकपालास्त्वमपि वसुमति ! ब्रूहि वाच्यं पवित्रा-
मिन्दोरन्यस्य दृष्टो यदि किल कलया स्यात्तताङ्कः शशाङ्कः ॥९०॥

तत्रैव गोत्रे संप्रति तु—

वाच्यं यत्र दुरुक्तयः कुचरितं नानाविधा वाणिका,
लाभः सान्द्रतमो रसः किमपरं भावश्च मोहो महान् ।
शैलूषैः कितवैरनेककपटश्रेणी महानाटकं,
द्यूतं यत्किल तत्र कौरवपतिः प्रस्तावनायां स्थितः ॥ ९१ ॥

पुरुषः—अज्जधम्मावदार विदुर ! किं पुण एव्वं भणीअदि जदो जूद-महत्तरा एव्वं मन्तअन्ति । (आर्यधर्मावतार विदुर ! किं पुनरेवं भण्यते यतो

(विदुर और हाथ में पासे हुए पुरुष आता है)

विदुर—इस महाराजाओं के वंश में ब्रह्मा जी से लेकर अब तक चित्र-विचित्र संसार के उत्पादक विष्णु के इस वंश में अवतार लेने से श्रेष्ठ इस वंश में, हे लोकपालो ! तथा हे पृथ्वि ! तू बतला यदि तूने चन्द्रमा को छोड़कर और किसी में कलङ्क देखा हो ॥ ९० ॥

उस ही वंश में आजकल—

जिसमें गाली देना ही बातचीत में शामिल है, दुष्ट चरित्र ही अनेक प्रकार की रचना है, लाभ, घनीभूत आनन्द या मजा-भाव मोह स्वरूप ही उत्पन्न होते हैं; छल-कपटरूपी नटों से जुआरूपी महानाटक खेला जाता है—ऐसे इस नाटक की प्रस्तावना दुर्योधन के रूप में विद्यमान है अर्थात् दुर्योधन ही इस नाटक का जन्मदाता है ॥ ९१ ॥

पुरुष—धर्मावतार ! आर्य ! विदुर ! आप ऐसा क्यों कह रहे हैं क्योंकि द्यूतशास्त्रियों का ऐसा सिद्धान्त है कि—

द्यूतमहत्तरा एवं मन्त्रयन्ते ।)

रणन्तमणिणेउरा रणरणन्तहारच्छडा
कणन्तमणिकङ्कणा मुहरमेहलामालिआ ।
भवन्ति भवणङ्गणे घणघणाउले ते परं
पसण्णदिण सामिणो इह जिणन्ति जू एण जे ॥ ९२ ॥

(रणन्मणिनूपुरा रणरणद्हारच्छटा
क्वणन्मणिकङ्कणा मुखरमेखलामालिका ।
भवन्ति भवनाङ्गणे घनघनाकुले ते परम्
प्रसन्नदिनस्वामिनः इह जयन्ति द्यूतेन ये ॥)

विदुरः—भद्र ! तिमिङ्गिलगिल-न्यायोऽयं शृङ्गयति नापि जीवति ।

(विचिन्त्य)

श्रीनिर्वासनडिण्डिमः क्वणरवः सद्म स्थिरं छद्मनां,
सत्योत्सारणघोषणा तत इतो लज्जानिवापाञ्जलिः ।
द्वारं ह्यार्ययशः पराभवपदं गोष्ठी गरिष्ठापदां
द्यूतं दुर्नयवारिधिर्निपततां कस्तत्र हस्तग्रहः ॥ ९३ ॥

शब्दायमान मणियुक्त नूपुरवाले तथा गुञ्जित होनेवाले हार की छटावाले मणिकङ्कण का शब्द करनेवाले, मेखला की माला के शब्दवाले, घने बादलों वाले, मकान के अन्दर प्रसन्न (स्वच्छ) दिन के वे मालिक बन जाते हैं जो जुआ खेल कर जीतते हैं ॥ ९२ ॥

विदुर—तिमिङ्गिलगिल, न्याय फैल रहा है, चिरस्थायी नहीं हो रहा है ।

(सोचकर)

यह जुआ लक्ष्मी के निकालने का डिण्डिम है, कपटों का स्थिर घर है, सत्य को निकाल कर बाहर कर देने की घोषणा है, निर्लज्जता का आवाहन या स्वागत है । श्रेष्ठ यश का तिरस्कार स्थानभूत द्वार है, भयङ्कर आपत्तियों की

---

१. 'तिमिङ्गिलगिल' नामकी एक मछली है जो अपने से छोटी मछलियों को खा लेती है यही मात्स्यन्याय या 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' इस कहावत का आशय है ।

पुरुषः—अज्जधम्मावदार विदुर ! किं पुण एव्वं सखेदं मन्तीअदि । (आर्य धर्मावतार विदुर ! किं पुनरेवं सखेदं मन्त्र्यते ।)

विदुरः—भद्र चण्डातक ! शृणु यन्मन्त्र्यते । (पुनस्तेदव पठति)

पुरुषः—अविग्घं भोदु । सुसच्छचित्तो मित्तेसु, सिणिद्धो बंधूसु, णिव्वाजरत्तो कलत्तेसु, विणअभङ्गुरो गुरूसु, प्रसादणिच्चो भिक्खेसु जुहिट्ठिरो। ता किं ति एसो कोरवेन्दस्स विसेसपरिफद्धो । (अविघ्नं भवतु । सुस्वच्छचित्तो मित्रेषु, स्निग्धो बन्धुषु, निर्व्याजरक्तः कलत्रेषु, विनयभङ्गुरो गुरुषु, प्रसादनित्यो भिक्षुषु युधिष्ठिरः । तत्किमित्येष कौरवेन्द्रस्य विशेषपरिस्पर्द्धः ।)

विदुरः—किमुच्यते ।

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा ।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे
मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥ ९४ ॥

कौरवपतिस्तु तस्य प्रत्युदाहरणम् ।

गोष्ठी है—अधःपतितोन्मुख के लिये दुर्नीति का समुद्र है जहाँ कोई हाथ लगानेवाला भी नहीं ॥ ९३ ॥

पुरुष—धर्मावतार ! विदुर ! इस प्रकार खिन्नतापूर्वक क्या सोच रहे हो ।

विदुर—चण्डातक ! सुनो जो सोच-विचार कर रहा हूं ।

(फिर वही श्लोक पढ़ता है ।)

पुरुष—तुम्हारा विघ्न न हो । युधिष्ठिर मित्रों से स्वच्छ व्यवहार रखते हैं, बन्धुओं से प्रेम करते हैं, स्त्रियों में निष्कपट अनुराग रखते हैं, गुरुओं में विनीत हैं, याचकों से हमेशा प्रसन्न रहते हैं, तो क्यों युधिष्ठिर के साथ दुर्योधन की इतनी स्पर्धा है ।

विदुर—क्या कहा—कि—

युधिष्ठिर धर्ममय महाद्रुम है, इस पेड़ का अर्जुन गुहा (तना) है, भीमसेन शाखा है, नकुल सहदेव पुष्प व फल हैं, इसकी जड़ कृष्ण, वेद और ब्राह्मण हैं ॥ ९४ ॥

कौरवराज दुर्योधन इसका प्रत्युदाहरण है ।

तथाहि—

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रो मनीषी ॥९५॥

यदयमाहूय वारणावतात् प्रेमप्रणयाख्यां नाम शकुनिकर्णकुरुपति-प्रेरितेन धृतराष्ट्रेण युधिष्ठिरोऽभिहितः। यदुत वत्स युधिष्ठिर! दुर्योधन-काटितेऽत्रसदसि भ्रातृद्यूतं प्रवर्तयितव्यमिति।

पुरुषः—तदो तेण किं पडिवण्णं (ततस्तेन किं प्रतिपन्नम्)

विदुरः—यत्पाशसंयतो वन्यः करीव प्रतिपद्यते तथा चाभिहितं तेन।

राजसूयक्रतोर्यज्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।
आहूतो न निवर्तेत द्यूतादपि रणादपि ॥ ९६ ॥

पुरुषः—अज्जेव्व अहं सउणिणा पउणीकदे अक्खे ससारं सारि-फलहं च समप्पिअं संपेसिदोम्हि सहामज्झे। ता अज्जकेधेसु। किं पुण कारणं दुज्जोहणस्स दुज्जणत्तणे। (अद्यैवाहं शकुनिना प्रगुणीकृतेऽक्षे ससारं शारिफलकञ्च समर्प्य संप्रेषितोऽस्मि सभामध्ये। तदार्यः कथयतु। किं पुनः कारणं दुर्योधनस्य दुर्जनत्वे।)

तथाहि—

दुर्योधन क्रोधरूपी महाद्रुम है, कर्ण तना है, शकुनि उसकी शाखा है, दुःशासन फूल और फल है, जड़ राजा धृतराष्ट्र हैं ॥ ९५ ॥

जो कि धृतराष्ट्र ने वारणावत से प्रेमपूर्वक शकुनि व कर्ण के कहने से युधिष्ठिर से कहा कि—वत्स! युधिष्ठिर! दुर्योधन से लगाई गयी इस सभा में भाइयों का आपस में जुआ कराना चाहिए।

पुरुष—फिर युधिष्ठिर ने क्या किया?

विदुर—पाश से बँधे हाथी की तरह उसने कहा कि राजसूय यज्ञ करने वाला पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर द्यूत तथा रण से नहीं हट सकता ॥ ९६ ॥

पुरुष—आज ही शकुनि से अक्षों के तैयार करने पर शारिफलक को देकर सभा में भेजा हूँ तो आप बतलाइए कि दुर्योधन की नीचता में क्या कारण है।

विदुरः—श्रुतो मया कुड्यान्तरितेन शकुनिना सह मन्त्रयमाणो महाराज दुर्योधनः ।

तत्रोत्सर्पिणि राजसूयसमये राज्ञः पृथा जन्मनो
द्वीपेशैर्विनयान्वितैरुपचितं चित्रैर्महाप्राभृतैः ।
प्रत्यक्षीकृतवान् यदस्मि विभवं कोशाधिकारे स्थित-
स्तेनाद्यापि निरौषधो मनसि मे दाहज्वरो जृम्भते ॥ १७ ॥

अपि च—गान्धाराधिपते मातुल !

मायामयेऽसमसभासलिले महाम्बु-
त्यक्त्वान्यतो व्रजति मय्यनभिज्ञभावम् ।
यत्कृष्णया विहसितं सह फाल्गुनेन
तन्मे मनः कुसुमभावमिदं लुनाति ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

देवश्चन्द्रकुलेप्रकाण्डतिलकः षाड्गुण्यवाचस्पति-
र्धीरो निर्मलकीर्तिनिर्झरगिरिर्भूखण्डविद्याधरः ।

विदुर—मैंने भीत से छिपकर शकुनि के साथ सलाह करते हुए दुर्योधन की बातें सुनीं—कि—

उस विशाल राजसूययज्ञ में कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के वैभव को द्वीप-द्वीपान्तरों के राजाओं से दी गई भेटों से चित्र-विचित्र वर्णयुक्त होते हुए उस समय कोशागार के मालिक बने हुये मैंने देखा और तब ही से मेरा मन जल रहा है जिसकी दवा भी नहीं है ॥ १७ ॥

और भी—हे गान्धारपते ! मामा जी ।

माया के बने सभाभवन में ऊंचा नीला जल समझकर जब मैं बचकर चला तो मैं बेवकूफ बना, और जब कि इस बात को देखकर कृष्णा (द्रौपदी) और अर्जुन ने मेरी हंसी उड़ाई तब ही से मेरा मन-कुसुम कुम्हलाया रहता है ॥९८॥

(नेपथ्य में)

चन्द्रमा के कुल का तिलक, सन्धि-विग्रह आदि छः गुणों का ज्ञानी, वीर, निर्मल कीर्ति झरने का प्रभव पहाड़, भूतल का विद्याधर, सातों द्वीपों के जय से

सप्तद्वीपजयैकलम्भित-महाश्वेतातपत्रोन्नतिः
पाण्डुः पाण्डुयशस्करो विजयते पृथ्वी पृथानन्दनः[1] ॥ ९९ ॥

पुरुषः—किण्णरकण्ठो एसो जुहिट्ठिरबन्दी पढदि। (किन्नरकण्ठ एष युधिष्ठिरबन्दी पठति)

(पुनर्नेपथ्ये)

नाले शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्वारिधेः
शश्वत्स्वर्गभुजंगचन्दनतरौ क्रोडोपधाने श्रियः।
आलाने जयकुञ्जरस्य सुदृशां कन्दर्पदर्पे चिरं
श्रीदुर्योधनदोष्णि विक्रमधने लीनं जगन्नन्दति ॥ १०० ॥

पुरुषः—एसो दुज्जोहणमाअधो कलकण्ठो नाम। (एष दुर्योधनमागधः कलकण्ठो नाम।)

विदुरः—संप्राप्तावेतौ युधिष्ठिरदुर्योधनौ सभाम्। एते च भीष्मद्रोण-कृपहार्दिक्यकर्णसोमदत्ताश्वत्थामादयः कौरवेश्वरभ्रातृशतं च प्रविशन्ति। तदावामपि प्रविशावः। (इति निष्क्रान्तौ)

इति विष्कम्भकः।

एक राज्य को उन्नत करने वाला, पृथ्वीरूपी पृथा का नन्दन राजा पाण्डु की जय हो॥

पुरुष—क्या यह किन्नर के समान स्वर वाला युधिष्ठिर-बन्दी पाठ कर रहा है।

(फिर नेपथ्य में)

शौर्य-कमल के नालस्वरूप, युद्ध समुद्र के सेतुरूप, स्वर्ग-सर्प के चन्दन-वृक्षभूत, लक्ष्मी के क्रीडास्थानभूत, सुन्दरियों के लिये कामदेवस्वरूप, पराक्रमी राजा दुर्योधन की भुजा के सहारे सारा संसार आनन्दित हो रहा है ॥ १०० ॥

पुरुष—यह कलकण्ठ नाम का दुर्योधन का चारण है।

विदुर—युधिष्ठिर तथा दुर्योधन भी सभा में आ गये। साथ ही भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, हार्दिक्य, कर्ण, सोमदत्त, अश्वत्थामा आदि तथा कौरवेश्वर दुर्योधन के सौ भाई आ रहे हैं। चलो हम दोनों अन्दर चलें। (निकल गये)

विष्कम्भक समाप्त

---

१. पृथानन्दन पद से युधिष्ठिर भी अभिप्रेत है।

(ततः प्रविशति युधिष्ठिरो भीमसेनश्च-दुर्योधनः शकुनिश्च, तयोस्ताम्बूल-करङ्कधारिण्यौ सुनन्दा सुरेखा च)

युधिष्ठिरः—

विवर्तयाक्षाञ्छकुने ! शारक्रीडां प्रवर्तय ।
धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च ममाज्ञा मौलिमृच्छति ॥ १०१ ॥
राजसूयक्रतोर्यज्वा पाण्डवोऽहं युधिष्ठिरः ।
आहूतो न निवर्तेयं द्यूतादपि रणादपि ॥ १०२ ॥

शकुनिः—(स्वगतं दक्षिणं पाणिमुद्यम्य)

हंहो हस्तकृतास्त्र ! दानसलिलप्रक्षालित ! स्वस्ति ते
लोकेष्वक्षविचक्षणश्च शकुनिः स्वांगेऽपि भक्तस्त्वयि ।
वीरे माननिधौ पराक्रमधने यद्भागिनेये मम
श्रीः पार्थप्रथमादपास्य भवता कार्या हि दुर्योधने ॥ १०३ ॥

(प्रकाशम्) तदार्य पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिरः—

हारोऽयं केरलस्त्री-विहसितशुचिभिः पङ्क्तिभिर्मौक्तिकानां,
शुभ्रेणैकाकृतीनां कृतसकलसभागर्भचन्द्रोदयश्रीः ।

(फिर युधिष्ठिर-भीमसेन, दुर्योधन-शकुनि और उनकी पानदान ले जाने वाली सुनन्दा और सुरेखा नाम की सेविकायें आती हैं)

युधिष्ठिर—हे शकुने ! तुम पाशा फेंको तथा जुआ खेलो—क्योंकि धृतराष्ट्र तथा पाण्डु की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है ॥ १०१ ॥

मैं राजसूय यज्ञ का याजक पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हूँ तथा जूए एवं रण से पीछे नहीं हट सकता ॥ १०२ ॥

शकुनि—(मन में) दाहिना हाथ उठाकर—

हे मेरे अस्त्र चलाने में चतुर ! दानजल से धुले हुए दाहिने हाथ ! तेरा कल्याण हो। शकुनि संसार में अक्षविद्या में निपुण है, हे हस्त ! अपने अङ्गस्वरूप तुममें भी शकुनि की भक्ति है, तुझे वीर, माननिधि, पराक्रमी मेरे भानजे दुर्योधन को आज कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से श्री हटाकर देनी है ॥ १०३ ॥

(प्रकाश में) अच्छा तो युधिष्ठिर ! शर्त कर लो ।

युधिष्ठिर—यह मेरा हार है जो केरल की स्त्रियों की हँसी के समान श्वेत

आतृद्यूते पणो मे रजनिचरपतेरर्जितो राजसूये
यस्यैतन्मध्यरत्नं तिरयति ककुभः कौङ्कुमीभिः प्रभाभिः ॥ १०४ ॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

दुर्योधनः—

राजावलीक्रमायातो रत्नकोषपणो मम ।
शकुन्तलाद्याभरणैर्यः पुनाति च पाति च ॥ १०५ ॥

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं महाराजदुर्योधनेन । हंहो युधिष्ठिर ! हारितो हारः ।

(दुर्योधनः सुरेखायाः कण्ठे परिधत्ते)

सुनन्दा—महाराज दुज्जोहण ! जुहिट्ठिरकण्ठणिवेसी सुसीसे पडिच्छणिज्जो दे हारो । जं पुणं अह्मारिसजणजोग्गं करेसि ता ण रोहिणीवल्लहकुलोचिदं अणुचिट्ठसि । (महाराज दुर्योधन ! युधिष्ठिरकण्ठनिवेशी सुशीर्षे प्रत्येषणीयः ते हारः यत्पुनः अस्मादृशजनयोग्यं करोषि तन्न रोहिणीवल्लभकुलोचितमनुतिष्ठसि ।)

तथा शुक्र तारे के समान गोल एवं सफेद मोतियों का हार दांव पर रख दिया है जो कि मैंने राजसूय यज्ञ में प्राप्त किया था जिसका यह लाल रंग का मध्यरत्न अपनी कुङ्कुम के समान प्रभा से दिशाओं को व्याप्त कर रहा है ॥ १०४ ॥

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है ?

दुर्योधन—पूर्वज राजाओं की परम्परा से प्राप्त यह रत्नों का खजाना मेरी ओर से दांव पर है जो कि शकुन्तला आदि रानियों के आभूषणों से पवित्र है और पापहारी है ॥ १०५ ॥

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये । अरे युधिष्ठिर तुमने हार हरा दिया ।

(दुर्योधन सुरेखा के कण्ठ में डाल देता है)

सुनन्दा—महाराज दुर्योधन युधिष्ठिर के कण्ठ में स्थापनीय हार तुम्हारे सुन्दर गले में डालने योग्य है । उस हार को तुम हम जैसों के योग्य बना रहे हो यह चन्द्रवंशियों के योग्य कार्य नहीं है ।

भीमः—साधु सुनन्दे साधु । उचितमभिहितम् ।

सुरेखा—अइ उड्डामरसीले ! जूदजिदे वि अहिजणत्तणं । (अये उड्डामरशीले ! द्यूतजितेऽपि अभिजनत्वम् ।)

शकुनिः—(स्वगतम्) प्रतिभावती सुरेखा । (तं प्रति सुरेखा) अपरः पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिरः—संपादिता तातधृतराष्ट्रस्याज्ञा । तदास्ताम् ।

शकुनिः—(विहस्य) दुर्योधने क्रीडति कथं धर्मात्मजो विरमति । नन्वधुनैव प्रतिज्ञातम् । आहूतो न निवर्तेयं द्यूतादपि रणादपीति ।

युधिष्ठिरः—(सुनन्दामवलोक्य सस्मरणम्)

कुर्वन्त्यो नयनैरपाङ्गतरलैर्दीर्घायुषं मन्मथं
तन्वन्त्यो हृदि रागिणां रतिमहावल्लीविलासं क्रमात् ।
न्यस्यन्तो मदिरामदस्य च हठात् कांचिन्मनोहारिता-
मङ्गैर्मुग्धमधूकपाण्डुभिरिमा वाराङ्गना मे पणः ॥ १०६ ॥

भीम—ठीक सुनन्दा ठीक । ठीक कहा ।

सुरेखा—अरी भयङ्कर शीलवाली, जुए में जीती हुयी वस्तु में भी अभिजनपना होता है ।

शकुनि—(मन में) सुरेखा बड़ी बुद्धिमती है । (युधिष्ठिर के प्रति) दूसरी शर्त कीजिए ।

युधिष्ठिर—पूज्य धृतराष्ट्र की आज्ञा पूरी कर दी । अब चुप हो जाओ ।

शकुनि—(हँसकर) दुर्योधन के खेलते हुए युधिष्ठिर कैसे रुक सकते हैं । अभी प्रतिज्ञा कर चुके हैं—कि मैं आह्वान करने पर द्यूत और रण से पीछे न हटूंगा ।

युधिष्ठिर—(सुनन्दा को देखकर कुछ याद करके)

चञ्चल नेत्रप्रान्तों से कामदेव की आयु बढ़ती हुई तथा रागियों के हृदय में रतिरूपी लता के विलास को फैलाती हुयी, मदिरा के मद की मनोहारिता को जमा करती हुयी सुन्दर नवीन मधूक-पुष्प के समान स्वर्णिम शरीर वाली यह स्त्रियाँ मैंने दांव पर रख दीं ॥ १०६ ॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः।

दुर्योधनः—

सुधावीचिमुचां वाग्भिर्विभ्रमैर्वल्लिकुण्डलः[1]।
ममापि वारनारीणां स्मरस्मेरो गणः पणः॥ १०७॥

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन।

दुर्योधनः—सुरेखे! त्वमेतासां सुनन्दाप्रभृतीनामधिष्ठात्री भव।

सुरेखा—जं कुरुवदी आणवेदि। (यत्कुरुपतिः आज्ञापयति) (प्रणमति)

सुनन्दा—धम्मणन्दणो उण जदि जिणन्तो आसि सुरेहापमुहीणं ता अहं अहिट्ठाइआ असि (धर्मनन्दनः पुनः यदि जयन्नभविष्यत् सुरेखाप्रमुखीनां तदहमधिष्ठात्री अभविष्यम्)

शकुनिः—अपरः पणः क्रियताम्।

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है?

दुर्योधन—अमृत टपकाने वाली वाणी से युक्त, विलासयुक्त, फूलों के कुण्डल धारण करने वाला वेश्याओं का कामोद्भिन्न समुदाय मेरी तरफ से दांव पर है॥ १०७॥

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—महाराजा दुर्योधन जीत गये।

दुर्योधन—सुरेखा! तू इन सुनन्दा आदि की मालकिन बन जा।

सुरेखा—जो कौरवराज की आज्ञा (प्रणाम करती है)

सुनन्दा—यदि धर्मपुत्र जीत जायेंगे तो मैं इन सुरेखा आदि की अधिष्ठात्री हो जाऊंगी।

शकुनि—दूसरी शर्त करो।

---

१. 'वल्लिकुण्डल' "वल्ली स्यादजमोदायां लताप्तकुसुमान्तरे" इति हैमः। अत्र वल्लि का अर्थ पुष्प विशेष लेना चाहिए।

युधिष्ठिरः—

निरर्गलविनर्गलङ्गुलुगुलाकरालैर्गलै
रिमे तडितिताडितोड्डमरडिण्डिमोड्डामराः ।
मदाचमनचञ्चुरप्रचुरचञ्चरीकोच्चयाः
पणः परिणतिक्षणक्षततटान्तरा दन्तिनः ॥ १०८ ॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

(दुर्योधनस्तदेव पठति ।)

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जिताः दन्तिनः ।

दुर्योधनः—(नेपथ्यं प्रति) दुःशासन ! द्यूतदन्तिनां त्वमसि प्रणेता ।
(नेपथ्ये) यदादिशत्यार्यदुर्योधनः ।

शकुनिः—अपरः पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—ये हाथी जिनके गले 'गुलगुला' मुंह के झाग या शब्द (अनुकरण रूप में) मुक्त हैं तथा 'तड'-इस प्रकार की भयङ्कर ध्वनि से डिण्डिम बजा रहे है एवं जिनका मदपान करने के लिये बहुत से भौंरे गण्डस्थल पर जमघट लगाये बैठे हैं। तथा परिणति (मदमत्तता) के क्षण[1] (उत्सव) में तालाबों के किनारे तोड़ देते हैं। यही मैंने दाँव पर रख दिये हैं ॥ १०८ ॥

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है ?

(दुर्योधन फिर वह श्लोक पूर्वोक्त पढ़ देता है)

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—हाथी भी जीत लिये ।

दुर्योधन—(नेपथ्य की ओर देखकर) दुःशासन ! जुए में जीते हुए हाथियों का तू ही रक्षक है। (नेपथ्य में) जो महाराज दुर्योधन की आज्ञा ।

शकुनि—अब दूसरी वस्तु दाँव पर रखिये ।

---

१. 'क्षण उद्धव उत्सवः' इत्यमरः ।

युधिष्ठिरः—

क्वणत्कनककिङ्किणीमुखरकन्धरासन्धिभि-
र्युतास्तरुणतित्तिरच्छविमनोजवैर्वाजिभिः ।
द्रूणाङ्कघनपट्टिशत्रिशिखदण्डिनः स्तम्भिनो,
रथाः प्रचलकाञ्चनध्वजमहापताकाः पणः ॥ १०९ ॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

(दुर्योधनस्तदेव पठति ।)

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—हारिता रथाः ।

दुर्योधनः—(नेपथ्यं प्रति) सखेऽङ्गराज ! त्वं रथानां नेता भव ।
(नेपथ्ये) यदादिशति कौरवेश्वरः ।

शकुनिः—अपरः पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—शब्दायमान सोने की छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त जुएं वाले, जवान तीतर के समान रंग के घोड़े वाले, चापयुक्त ये रथ मैंने दांव पर रख दिये हैं ॥ १०९ ॥

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है ?

(दुर्योधन फिर वही १०६ वां श्लोक पढ़ता है)

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—रथ हार गये ।

दुर्योधन—(नेपथ्य की ओर देखकर) हे अङ्गराज ! तू रथों का स्वामी बन जा ।

जो कौरवेश्वर की आज्ञा ।

(नेपथ्य से)

शकुनि—दूसरी शर्त करो ।

---

१. द्रुण का अर्थ धनुष है तथा अङ्क का मध्यभाग जैसा कि लिखा है—'द्रुणं चापेऽस्त्रलिनि द्रुणः' इति मेदिनी । 'उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः कलङ्कोऽङ्कापवादयोः' इत्यमरः ।

युधिष्ठिरः—

महीधरदरीषु ये सनिनदं पतद्भिः खुरै-
र्लिखन्ति च पठन्ति च स्फुटतरं टकारानिव ।
विरोचनहयावलीकुलभुवां स तेषामयं
पणः पवनरंहसां मम तुरंगमाणां गणः ॥ ११० ॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

(दुर्योधनस्तदेव पठति)

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन ।

दुर्योधनः—मातुल ! त्वमेतेषां तुरंगमाणां प्रभुर्भव ।

शकुनिः—यदाह महाराजः । (राजानमुद्दिश्य)

किं वाजिभिः किमु गजैः किमथो रथैश्च
सापत्नकं न धृतये धरणिः पणोऽस्तु ।
एकातपत्रमिदमद्य चिराय राज्यं
धर्मात्मजो भजतु वा धृतराष्ट्रजो वा ॥ १११ ॥

युधिष्ठिर—पहाड़ की गुफाओं में जो टाप पड़ते समय मानों स्पष्ट रूप में 'ट' कार के बोलने और लिखने का अभ्यास करते हैं। वे सूर्य के घोड़ों के वंशोत्पन्न ये घोड़े मेरी तरफ से दांव पर रक्खे जाते हैं ॥ ११० ॥

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है ।

(दुर्योधन फिर वही १०६ वां श्लोक पढ़ता है)

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये ।

दुर्योधन—मामा जी ! आप इन घोड़ों के स्वामी बन जाइए ।

शकुनि—जो महाराज ने कहा । (राजा को देखकर)

हाथी, घोड़े और रथों को पण रखने से क्या—इस पृथ्वी को ही दांव पर रखिये, क्योंकि शत्रुतायुक्त राज्य ठीक नहीं । इस पृथ्वी का आधिपत्य एकच्छत्र होना चाहिए । अतः उसे युधिष्ठिर ही ले लें या दुर्योधन ही ले लें—जिससे रात-दिन का झगड़ा मिटे ॥ १११ ॥

युधिष्ठिरः—यद्येवम् ।

ऐलः प्राक् स पुरूरवाः प्रभुरभूद्यस्योर्वशीवल्लभो
दुष्यन्तः स च योऽभ्यसूत भरतं शाकुन्तलं शान्तये ।
श्रीमाञ्छन्तनुरग्रिमः स च सतां गङ्गाकलत्रेण य-
स्तत्सिंहासनमम्बुराशिरशनां शासन्महीं मे पणः ॥११२॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

(दुर्योधनस्तदेव पठति)

(नेपथ्ये)

राजन् युधिष्ठिर नराधिप कौरवेन्द्र !
वंशे युवां भगवतो भवशेखरस्य ।
द्यूतं न युष्मदुचितं ननु चिन्त्यतां च
कैः क्षत्रियैर्वसुमती पणिता पुराणैः ॥ ११३ ॥

युधिष्ठिरः—भोः ! सभासदः, कथं किल राजसूययज्वा प्रतिज्ञातमर्थं कदर्थयति ।

युधिष्ठिर—यदि यह बात है तो—

जिस सिंहासन का पहिले इला का पुत्र उर्वशी का पति पुरूरवा पति था, तथा फिर भरत का पिता दुष्यन्त जिसका स्वामी बना, तदनन्तर गङ्गा का पति शान्तनु जिस पर बैठा—वह समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी का शासन करने वाला सिंहासन मेरी ओर से दांव पर रक्खा जाता है ॥ ११२ ॥

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है ?

(दुर्योधन फिर वही १०६ वां श्लोक पढ़ता है)

(नेपथ्य में)

हे राजन् युधिष्ठिर तथा हे कौरवेश्वर दुर्योधन ! तुम दोनों चन्द्रमा के वंश में उत्पन्न हुये हो । तुम्हें जुआ ही खेलना उचित नहीं—खेलते भी हो तो सोचो तो सही कि प्राचीन किन राजाओं ने पृथ्वी को दांव रक्खा था (किसी ने भी नहीं फिर तुम ऐसा क्यों करते हो) ॥ ११३ ॥

युधिष्ठिर—हे सभासदो ! प्रतिज्ञात बात को राजसूय-यज्ञ करने वाला कैसे छोड़ सकता है ।

दुर्योधनः—हंहो सभ्याः ! अक्षधर्मा[1] अपि निषिध्यन्ते ।

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन ।

दुर्योधनः—स्वयमहमस्य राज्यार्धस्याधिष्ठाता ।

शकुनिः—अपरः पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिरः—किं नामावशिष्टं यत्पणीक्रियते ।

शकुनिः—किं नाम हारितं शरीरे तिष्ठति सति । शरीरधना हि राजानः ।

युधिष्ठिरः—यद्येवम् ,

निर्यान्ति यस्य वदनाद् वितथा न वाचो
यो राजसूयविधिनिर्धुत-पाप्मपङ्कः ।
सोढा न चानुजमहाविरहस्य योऽस्मि
सोऽयं स्वयं तव पणः प्रथमः पृथाभूः ॥ ११४ ॥

दुर्योधन—क्या सभ्यो ! जूएबाजों को भी मना करते हो ।

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—राजा दुर्योधन जीत गये ।

दुर्योधन—इस आधे राज्य का मैं स्वयं मालिक बनता हूँ ।

शकुनि—और कुछ दाव पर रक्खो ।

युधिष्ठिर—अब क्या रहा जो दाव पर धरें ।

शकुनि—शरीर के रहित हारा ही क्या ? राजाओं का धन शरीर ही होता है ।

युधिष्ठिर—यदि यह बात है तो—

जिसके मुख से कभी झूठ बात नहीं निकलती तथा राजसूय करके जिसने सारे पाप धो दिये हैं एवं जिसको भाइयों का वियोग सह्य नहीं, ऐसा यह युधिष्ठिर स्वयं दाँव पर लगाया जाता है ।

---

१. 'अक्षधर्मा' पाठ मूल में है 'अक्षधर्माणः' पाठ उचित है या अक्ष के धर्म यही अर्थ ठीक है ।

भीमः—(स्वगतम्) कथम् । आत्माऽपि पणीकृतः। अहो सत्यसन्धता युधिष्ठिरस्य । (प्रकाशम्) भवतस्तु कः पणः ।

दुर्योधनः—

हेलानमन्नृपकिरीटविटङ्ककोटि—
श्रृङ्गारिरत्नचितकाञ्चनपाठपीठः ।
वैतालिकैः स्तुतसमस्तयशोत्सवश्रीः
सोऽयं स्वयं प्रतिपणस्तव कौरवेन्द्र ॥ ११५ ॥

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन ।
युधिष्ठिरः—जितोऽस्मि । तव नियोगे भृत्यः ।
शकुनिः—पुनरपरः पणः क्रियताम् ।
युधिष्ठिरः—कः पुनरपरः पणः ?

भीम—(अपने मन में) ओहो ! यह तो खुद भी दाव पर लग गये । क्या कहना युधिष्ठिर की सत्य प्रतिज्ञा का—आश्चर्य है । (स्पष्ट रूप से जोर से) आप लोगों की क्या शर्त है ?

दुर्योधन—लीलापूर्वक प्रणाम करते हुए राजाओं के मुकुटों के मध्य भाग की रत्नकोटि(अग्रभाग)यों से जिसके चरण का ऊपर का भाग चुम्बित होता है, वह वैतालिकों द्वारा यशोगान किया जाता हुआ कौरवाधीश दुर्योधन दांव पर है ॥ ११५ ॥

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये ।
युधिष्ठिर—मैं हारा, और तुम्हारा आज्ञाकारी भृत्य बन गया ।
शकुनि—और कुछ दांव पर रखिये ।
युधिष्ठिर—और क्या रखूँ ।

शकुनिः—भ्रातरः ।

युधिष्ठिरः—

यो मन्थानकरः क्रतौ निजकुलप्राकारबन्धश्च यो
दोर्भ्यां यः प्रसभं व्यधत्त च जरासन्धस्य सन्धिच्छिदाम् ।
सोऽयं दृप्तहिडिम्बडिम्बविजयी वीरस्त्रिलोकाद्भुतम्
भीमो भीमपराक्रमः पृथुगदाव्यग्राग्रपाणिः पणः ॥ ११६ ॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

दुर्योधनः—

संकर्षणान्निजतनूज्ज्वलकीर्तिराशेः
सार्धं मयाधिगतदिव्यमहारहस्यः ।
त्वत्सोदरस्य मम सोदर एष वीरो
दुःशासनः प्रतिपणोऽस्य वृकोदरस्य ॥ ११७ ॥

(उभौ क्रीडतः)

शकुनि—भाइयों को रक्खो ।

युधिष्ठिर—जो राजसूय यज्ञ में रई लेकर दही बिलोता था तथा हमारे वंश का रक्षक है, जिसने बाहुओं से जबरदस्ती जरासन्ध को चीर डाला था वह अभिमानी हिडिम्बासुर के विप्लव[1] का या भयविजेता गदापाणि भीम मेरी ओर से दांव पर है ॥ ११६ ॥

भीम—तुम्हारी ओर से दांव पर क्या है ?

दुर्योधन—अपने शरीर जैसी उज्ज्वल कीर्ति संचित करने वाले बलराम से जिसने मेरे साथ गदायुद्ध की शिक्षा प्राप्त की है—वह मेरा सहोदर दुःशासन तेरे सहोदर के उत्तर में दांव पर है ॥ ११७ ॥

(दोनों खेलते हैं)

---

१. यहां "हिडिम्बडिम्बविजयी" पाठ में डिम्ब का अर्थ हमने 'विप्लव' या 'भय' किया है क्योंकि हेमचन्द्र ने लिखा है कि—'डिम्ब एरण्डभययोर्विप्लवे प्लीह्नि फुफ्फुसे" इति ।

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन ।

दुर्योधनः—अपरः पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिरः—

कर्णप्रावरणैः सहैकचरणानश्वाननैः किन्नरौ—
स्त्र्यक्षैस्तुल्यशिखान् वलीमुखमुखैर्यक्षांश्च रक्षांसि च ।
निर्जित्याकनकाद्रितो जनपदान्यो राजसूये कृतौ
सम्राजं कृतवान् युधिष्ठिरमलं सोऽयं किरीटी पणः ॥११८॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

दुर्योधनः—

यो भार्गवाद्भगवतोऽर्जितचापवेदो
द्रोणेन तुल्यगरिमा मम धर्ममित्रम् ।

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये ।

दुर्योधन—दूसरी शर्त कीजिए ।

युधिष्ठिर—हाथियों के द्वारा एकचरण अर्थात् अश्वों को क्योंकि अश्व 'एक खुरे' वाले होते हैं, अश्वमुख वाले किंपुरुषों से किन्नरों को, तीन नेत्र वाले गणों के द्वारा सिद्धों तथा यक्षों को एवं लंगूरों के द्वारा राक्षसों को जीतकर तथा सुमेरु पर्वत से लेकर छोटे-छोटे जनपदों तक विजयकर जिसने राजसूययज्ञ में युधिष्ठिर को चक्रवर्ती सम्राट् बनाया था—वह अर्जुन मेरी ओर से दांव पर रक्खा जाता है ।

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है ?

दुर्योधन—जिसने भगवान् परशुराम से धनुर्वेद का अध्ययन किया, द्रोण के

---

१. 'त्र्यक्षैः' पद का 'यक्षांश्च' के साथ अन्वय है ।

स प्रेरितार्थिजनवाग्भिररिक्तकर्णः
कर्णः स्वयं प्रतिपणोऽस्य धनञ्जयस्य ॥ ११९ ॥

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन ; तदपरः पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिरः—

सौहार्दात् प्रणयादथ प्रथमतः स्नेहातिरेकेण वा
यो देवेन रथाङ्गिनापि समयं हित्वा करं लम्भितः ।
पाश्चात्यक्षितिपालनिर्मलयशःप्रस्तारहारान् हरन्
सोऽयं मे नकुलः कुलैकतिलको युद्धप्रवीणः पणः ॥१२०॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ।

समान, मेरा धर्म का मित्र, वह याचकों की वाणी से जिसके कान भरे हुए हैं—वह कर्ण इस धनञ्जय अर्जुन का प्रतिपण है ॥ ११९ ॥

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—महाराज दुर्योधन की जीत हो गयी अतः अब दूसरा दाँव लगाइए ।

युधिष्ठिर—मैत्रीभाव से प्रेम से या अत्यधिक प्रीति से जिसको भगवान् कृष्ण ने भी प्रतिज्ञा भङ्ग करके अपना हाथ[1] (सहारा) दिया था—वह पाश्चात्य देशवासी, राजाओं के निर्मल यश के हारों को हरता हुआ यह कुल का तिलक युद्धप्रवीण नकुल मेरा दांव पर स्थापित है ॥ १२० ॥

भीम—तुम्हारी क्या शर्त है ?

---

१. नकुल की रक्षा के लिये कृष्ण ने युद्ध में चक्र उठा लिया था—ऐसा प्रसिद्ध है ।

दुर्योधनः—

नकुलस्यापि ते भ्रातुर्भ्राता प्रतिपणो मम ।
बिभ्रत्कीर्तिमहानावि विकर्णः कर्णधारताम् ॥ १२१ ॥

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन । तदपरः पणः क्रियताम् ।

युधिष्ठिरः—

हेलालोलितपाण्ड्यकेरलबलो यः सिंहलं लङ्घयन्,
द्राक् संक्षुभ्य विभीषणेन तरसा दूरात्करं लम्भितः ।
नित्यं रावणनिर्जितामरहृतैर्यः सम्भृतो भूषणैः
सौम्यश्रीः सहदेव एष स पणः क्षत्रैकचूडामणिः ॥ १२२ ॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः ?

दुर्योधनः—अनिर्जितो भ्राता विकर्ण एव मम पणः ।

(उभौ क्रीडतः)

दुर्योधन—तुम्हारे भाई नकुल के उत्तर में मेरा भाई विकर्ण प्रतिपण है जो कीर्तिरूपी नाव का कर्णधार है ॥ १२१ ॥

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—महाराज दुर्योधन फिर जीत गये। तो अब कोई और शर्त करो।

युधिष्ठिर—जिसने लीला से पाण्डच तथा केरल-सेना को हरा दिया। जिसको सिंहल द्वीप को पराजित करते समय विभीषण ने दूरात् अप्रत्यक्षरूप से सहारा दिया। रावण से हराये हुये देवताओं से गृहीत भूषणों से जो लदा रहता है—वह सौम्यकान्ति वाला, क्षत्रियों में श्रेष्ठ सहदेव मैंने दांव पर रख दिया है ॥ १२२ ॥

भीम—तुमने दांव पर क्या लगाया ?

दुर्योधन—अभी तक अपराजित मेरा भाई विकर्ण ही दांव पर है।

(दोनों खेलते हैं)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन। तदपरः पणः क्रियताम्।

युधिष्ठिरः—किं नाम न हारितम्। कः पुनरपरः पणः?

दुर्योधनः—धर्मदारा द्रौपदी।

युधिष्ठिरः—

संभूता द्रुपदाध्वरे हुतभुजः पाण्डोर्नृपस्य स्नुषा,
राधावेधमहापणेन विजिता राज्ञां पुरः पश्यताम्।
भूभृन्मौलिमणीन्दुदीधितिजलैर्या स्नातपादाम्बुजा
सा देवी विनयाभिमानवसतिः कृष्णा वितृष्णा पणः॥ १२३॥

भीमः—भवतस्तु कः पणः।

दुर्योधनः—

ज्येष्ठत्वात् पाण्डुपुत्रस्य धृतराष्ट्रस्य या स्नुषा।
सा देवी देवराजार्हा मम भानुमती पणः॥ १२४॥

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये। अब दूसरी शर्त करो।

युधिष्ठिर—क्या नहीं हरा दिया। अब और क्या दांव पर धरूं।

दुर्योधन—अपनी धर्मपत्नी द्रौपदी को।

युधिष्ठिर—जो देवी द्रुपद ने यज्ञ में अग्निदेव से प्राप्त की थी तथा जो राजा पाण्डु की पुत्रवधू है तथा जिसको राजाओं के सामने राधा[1] को (लक्ष्य को) बींध कर विवाहित किया था, जो राजाओं की शिरोमणियों के कान्तिजल से अपने पैर धोती थी—वह तृष्णारहित तपस्विनी द्रौपदी दाँव पर रक्खी जाती है॥ १२३॥

भीम—आपकी क्या शर्त है।

दुर्योधन—मेरे पाण्डुपुत्र से ज्येष्ठ होने से जो कि धृतराष्ट्र की पुत्रवधू है अर्थात् तुम्हारी भाभी है वह देवराज इन्द्र के योग्य भानुमती मेरी ओर से दाँव पर है॥ १२४॥

---

१. "राधा विद्युद्विशाखा च गोपी वेध्यविशेषयोः" इति हैमः।

सुनन्दा—(स्वगतम्) एसो जेट्ठकणिट्ठाणं विणिमओ। (एष ज्येष्ठ-कनिष्ठानां विनिमयः)

(उभौ क्रीडतः)

शकुनिः—जितं जितं महराजदुर्योधनेन।

दुर्योधनः—दुःशासन ! आनीयतां द्यूतदासी द्रौपदी।

दुःशासनः—यदादिशति कौरवपाण्डवनाथः।

दुर्योधनः—अपरः पणः क्रियताम्।

युधिष्ठिरः—न मे पणान्तरमस्ति।

दुर्योधनः—

वर्षाणि द्वादशारण्ये सह तिष्ठतु निष्ठया।
अज्ञातचर्चया वर्षमावयोर्यो विजीयते ॥ १२५ ॥

(युधिष्ठिरस्तदेवानुवदति)

(उभौ क्रीडतः)

सुनन्दा—(अपने मन में) यह बड़े छोटों का तबादिला है।

(दोनों खेलते हैं)

शकुनि—महाराज दुर्योधन की जीत हो गयी।

दुर्योधन—दुःशासन ! जुए में हारी हुयी दासी द्रौपदी को लाओ।

दुःशासन—जो कौरव तथा पाण्डव के अधीश की आज्ञा।

दुर्योधन—अब दूसरी शर्त करो।

युधिष्ठिर—अब कुछ दाँव पर रखने को नहीं रहा।

दुर्योधन—बारह वर्ष तक जंगलों में एक निष्ठा से रहे तथा एक वर्ष तक अज्ञात वास करे—जो हम दोनों में हार जाये ॥ १२५ ॥

(युधिष्ठिर उसी का अनुवाद कर देता है)

(दोनों खेलते हैं)

शकुनिः—जितं जितं महाराजदुर्योधनेन ।

(नेपथ्ये)

पञ्चानां या कलत्रं द्रुपदमखविधौ चाद्भुतं जन्म यस्याः
पूतायाः राजसूयावभृथपरिगमे मन्त्रपूतैः पयोभिः ।
तामेतां द्यूतदासीं कुरुपतिनियमं मूर्ध्नि कृत्वा मयाऽन्तः
केशेष्वाकृष्यमाणां शृणुत नृपतयो यस्य शक्तिः स पातु ॥१२६॥

दुर्योधनः—कथम् अयं संपादितमदाज्ञः सद्रौपदीको वत्सदुःशासनः प्राप्त एव ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी दुःशासनश्च । दुःशासनस्तदेव पठति)

सुनन्दा—(सहसोपसृत्य हस्तमोटनं नाटयन्ती) दुस्सासण ! मुञ्च मुञ्च पञ्चालीकेसहत्थं । (दुःशासन ! मुञ्च मुञ्च पाञ्चालीकेशहस्तम्)

(दुःशासनस्तामपनुद्य समन्तादवलोक्य विहस्य च)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये ।

(नेपथ्य में)

हे राजाओ ! सुनो जो पांच पाण्डवों की धर्मपत्नी है तथा द्रुपद के यज्ञ में जिसका जन्म अद्भुत रूप से हुआ है, जो राजसूय यज्ञ में अवभृथ स्नान के समय मन्त्र से अभिमन्त्रित जलों से पवित्र हो चुकी है, उस द्यूतदासी द्रौपदी को दुर्योधन की आज्ञा से केश पकड़कर खींच रहा हूँ, जिसकी ताकत हो बचा ले ॥ १२६ ॥

दुर्योधन—अरे ! मेरी आज्ञा मानकर द्रौपदी-सहित दुःशासन आ ही गया ।

(फिर यथोक्त द्रौपदी और दुःशासन आते हैं, दुःशासन १२६ वां श्लोक फिर पढ़ता है)

सुनन्दा—(एकदम पास जाकर दुःशासन का हाथ मोड़ती या पकड़ लेती है) दुःशासन ! द्रौपदी के केशों को छोड़ दे ।

(दुःशासन उसको हटाकर चारों तरफ देखकर हँसकर)

यन्मुक्तः स्फारतारध्वनिभरितसभाकुञ्जगर्भः सरोषं
हुङ्कारः कातराणां तरलितहृदयः फाल्गुनस्याग्रजेन।
कुर्वद्भिर्हारवल्लीहननिबिडताञ्जूटकूटान्नृपैस्त-
न्न्यस्ताः खड्गेषु रत्नत्सरुषु सरभसं संप्रहाराय हस्ताः ॥१२७॥

सुनन्दा—(हस्तमोटनं पुनर्नाटयित्वा)

अस्सा चुम्बिअ पल्लवाण बहुणा णेहेण वड्ढज्जुणा
जाणं मुक्कलवेणिबन्धणकरो भाआ सविति्तजिणो।
चण्डं पण्डवगेहिणीअ चिहुरे आकड्ढअन्तेण ते,
किं दुस्सासणदुस्सहाकवलिआ हालाहलग्गंगरा ॥ १२८ ॥

(अस्याः चुम्बितपल्लवेषु बहुना स्नेहेन वर्धिष्णुनि
जाने मुक्तकवेणिबन्धनसरे भासा सवितृजितो।
चण्डं पाण्डवगेहिनीसुचिकुरे चाकृष्टप्रान्ते त्वया
किं दुःशासन ! दुस्सहा कवलिता हालाहलस्यांऽकुराः ॥ १२८ ॥)

द्रौपदी—वच्छ दुस्सासण ! मुञ्ज मे केसहत्थं। कधं एक्कवत्था

जो कि अर्जुन के बड़े भाई भीम ने उच्चस्वर-युक्त रोषपूर्ण हुङ्कार की है उससे कायरों के दिल दहल गये तथा हार लता से अपने जटाजूट तथा मुकुटों को बाँधते हुये राजाओं ने प्रहार करने के लिये रत्नजटित खड्गों की मूठों पर अपने हाथ सहसा रख लिये ॥ १२७ ॥

सुनन्दा—(फिर से दुःशासन के हाथ को मोड़ने का अभिनय कर)

इन फूलों से सुसज्जित, तेल-फुलेल से बढ़ाये हुए, वेणिबन्धन छुटे हुए अपनी प्रभा से सूर्य को जीतने वाले द्रौपदी के केशों को क्रूरता से खींचने से हे दुःशासन ! तूने विष के अङ्कुरों को कवलित कर लिया ॥ १२८ ॥

द्रौपदी—वत्स दुःशासन ! मेरे बालों को छोड़ दे। मैं एकवस्त्रा बनकर (रजस्वला होते हुये) गुरुओं तथा राजाओं के सामने कैसे घुमूँगी ?

---

१. 'राधावेधी किरीटयैन्द्रिः श्वेताश्वः फाल्गुनो नरः' इति केशवः।

भविअ गुरुणरेन्दपुरदो संचिरिस्सं। (वत्स दुःशासन ! मुञ्च मे केशहस्तम्। कथमेकवस्त्रा भूत्वा गुरुनरेन्द्रपुरतः संचरिष्यामि।)

दुःशासनः—(विहस्य) नन्वपनयाम्येकवस्त्रताम्।

([1]कोटवीकरणेन बहुवस्त्राकर्षणं नाटयन्)

यावन्नैकं द्रुपददुहितुः कृष्यते वस्त्रमस्या-
स्तस्याश्चान्यद्भवति पिहितं तावदङ्गं ततश्च।
खिन्नं चैतन्मम करतलं वाससां चैष राशि-
स्तन्मन्येऽसौ त्रिभुवनमनोमोहिनीं वेत्ति विद्याम्॥ १२९॥

द्रौपदी—भो दुस्सासण ! मम किं अवरद्धं जेण दुज्जणोचिदं करेसि। (भोः दुःशासन ! मया किमपराद्धं येन दुर्जनोचितं करोषि।)

दुःशासनः—अयि पाञ्चालि ! पञ्चानां कलत्रं भूत्वा किमपि व्रीडसे।

(साक्षेपम्)

हे द्रौपदि ! त्वमसि कात्र पतिव्रतानां
किं दृष्टपञ्चपुरुषा वनिता कलत्रम्।

दुःशासन—(हंसकर) नग्न किये देता हूँ।

(नंगी करते समय बहुत से कपड़ों को खींचता है)

जब तक कि मैं इस द्रौपदी का एक भी वस्त्र पूरी तौर से खिच नहीं पाता कि इतने में दूसरे कपड़े से उसका अंग ढक जाता है। मेरा हाथ खींचते-खींचते थक गया, कपड़ों का ढेर लग गया। तो मैं समझता हूँ कि यह त्रिभुवन-मनोमोहिनी विद्या को जानती है॥ १२९॥

द्रौपदी—मैंने तेरा क्या अपराध किया जो इस प्रकार दुर्जनोचित व्यवहार मेरे साथ कर रहे हो।

दुःशासन—पाँच की स्त्री बनने पर क्या लज्जा ?

(आक्षेप सहित)

हे द्रौपदि ! तू भी क्या पतिव्रता है, जिसने पाँच पुरुषों से विवाह किया हो

---

१. तथा 'नग्ना तु कोटवी' इति हैमः।

दुर्योधनस्य तदिमं भज वाममूरु-
मास्फालितं मुकुलिताङ्गुलिना करेण ॥ १३० ॥

द्रौपदी—(तदनादृत्याञ्जलिं बद्ध्वा) हंहो सहामज्झट्ठिदा गुरुणो णरेन्दा आ दोवदी णिणअं पत्थेदि । (हंहो सभामध्यस्थिता गुरवो नरेन्द्राश्च ! द्रौपदी निर्णयं पश्यति ।)

(नेपथ्ये) द्रौपदि ! विकर्णस्त्वामाह, कीदृशो निर्णयः ।

द्रौपदी—किं अहं पढमं हारिदा जूदे अप्पा वा धूम्मणन्दणेन । (किं अहं हारिता द्यूते आत्मा वा धर्मनन्दनेन ।)

(नेपथ्ये) प्रजावति ! तवायमभिप्रायः ।

यद्यहं हारिता पूर्वं भवामि द्यूतकिङ्करी ।
आत्मा वा हारितः पूर्वं तदहं नास्मि हारिता ॥ १३१ ॥

दुःशासनः—(सक्रोधमिव) अरे रे ! अकर्ण ! विकर्ण ! सभामध्यमध्यासीने भुवनपतावार्यदुर्योधने किमित्थं प्रलपसि ?

(प्रविश्य)

क्या वह स्त्री भी "धर्मपत्नी" कही जा सकती है ? अतः तू दुर्योधन की बाँई जांघपर जाकर बैठ जा, जिसको वह अङ्गुलि सकोड़कर बजा रहा—फटकार रहा है ॥ १३० ॥

द्रौपदी—(इस बात की परवाह न करके हाथ जोड़कर) हे सभाभवन में स्थित गुरुओ ! तथा राजाओ ! द्रौपदी का फैसला कर दो ।

(नेपथ्य में) विकर्ण तुमसे कहता है कि निर्णय कैसा ?

द्रौपदी—धर्मनन्दन युधिष्ठिर ने जूये में पहिले मुझे दाव पर रखकर हराया है या अपने को ?

(नेपथ्य में) हे प्रजावति ! तेरा यह अभिप्राय है कि—

यदि मैं पहिले हारी हूँ तो द्यूतदासी बन सकती हूँ, यदि वे (युधिष्ठिर) पहिले अपने आपको हरा चुके हों तो मैं द्यूतदासी नहीं बन सकती ॥ १३१ ॥

दुःशासन—(गुस्से में आकर) अरे ! कानोंरहित ! विकर्ण ! सारे भूमण्डल के स्वामी दुर्योधन महाराजा के बैठे हुये क्यों इस प्रकार बकवाद कर रहा है ?

(घुसकर)

विकर्णः—(साक्षेपम्)

द्यूतं क्षत्रकुलव्रतं नहि भवेज्जेतुः पणोऽस्वामिनां
संरम्भः किमकाण्ड एव भवता सद्वर्त्म यत्त्यज्यते ।
भो दुःशासन ! कः क्रमो द्रुपदजाकेशाम्बराकर्षणे
दुर्वृत्तिं क्षमते न कस्यचिदयं भ्राता विकर्णस्तव ॥ १३२ ॥

दुःशासनः—(सभ्रुकुटीवन्धम्) अरे रे धार्तराष्ट्रबटो ! वाचाटोऽसि । तदद्य प्रभृति—

न्यायवादी विकर्णोऽत्र भवद्भ्यो यद्यहं बहिः ।
नद्यूयं शतमेकोनं षट् च संप्रति पाण्डवाः ॥ १३३ ॥

दुर्योधनः—तदतिमुह्यतस्तव कतरः पन्थाः ।

विकर्णः—

यां मे बलः सुबलवान् दलितप्रलम्बां
शिष्येषु सत्स्वपि महत्सु गदामदत्त ।

विकर्ण—(आक्षेप-सहित)

जुआ खेलना क्षत्रियों का कुलोचित धर्म है । विजेता के लिये जो जिस वस्तु का स्वामी नहीं वह उसको दाव पर नहीं रख सकता । तुम बिना अवसर क्यों क्रोध करते हो तथा सज्जनोचित मार्ग क्यों छोड़ दिया । हे दुःशासन ! द्रौपदी के केश तथा वस्त्र खींचने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, यह तेरा भाई विकर्ण किसी भी मनुष्य का अनार्य-जनोचित व्यवहार सहन नहीं कर सकता ॥ १३२ ॥

दुःशासन—(भौं चढ़ाकर) अरे धृतराष्ट्र के पुत्र ! बालक ! तू बड़ा बकवादी है । तो आज से—न्यायप्रिय विकर्ण यदि आप लोगों में है तो मैं आप में (भाइयों में) नहीं रहता—और यदि विकर्ण हममें नहीं तो भी (मेरे या विकर्ण के किसी एक के न रहने से) हम लोग ९९ हैं—तथा पाँचों पाण्डव एक के (विकर्ण के) बढ़ जाने से अब ६ बन गये ॥ १३३ ॥

दुर्योधन—तो अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य करते हुये तुम्हारे लिये कौनसा मार्ग है ?

विकर्ण—जिस गदा को मुझे अनेकों शिष्यों के होने पर भी बलराम (गुरु)

सा मे यदादिशति हस्ततलावतीर्णा
दुर्वृत्तदण्डनविधौ मम सोऽत्र पन्थाः ॥ १३४ ॥

(समन्तादवलोक्य)

क्षत्रैकत्रासचिन्ताकुलमनसि नभःसिन्धुपुत्रे पवित्रे
द्रोणो द्राक् श्मश्रु शुभ्रं दलयति शकुनौ वर्णयत्यक्षशिक्षाम् ।
कर्णे कर्णान्तिकस्थे हसति कुरुपतौ दृष्टयः पाण्डवानां
दुष्टं दुःशासनं च क्षितिपतितिलकं यान्ति धर्मात्मजञ्च ॥ १३५ ॥

दुःशासनः—(हे द्रौपदीत्यादि पठति)

विकर्णः—अहो ! उचितकारिता पाण्डवानाम् ।
आकर्ण्य कौरवकुमारबलं प्रचण्ड-
मत्युल्लसन्ति गुरुरोषकषायताराः ।

ने मुझे ही दिया था, तथा जिससे प्रलम्बासुर को मारा था—वह गदा हाथ में उठाने पर जो रास्ता मुझे दुष्टों को दण्ड देने के विषय में बतलायगी—वही मेरा मार्ग है ॥ १३४ ॥

(चारों ओर देखकर)

जब कि पवित्रात्मा गङ्गादेवीगर्भज भीष्म जो क्षत्रिय-कुल के नाश के भय से चिन्तित हो रहे हैं (अर्थात् विचारमग्न हैं), द्रोणाचार्य अपनी श्वेत दाढ़ी सहला रहे हैं। तथा शकुनि द्यूतविद्या का सविस्तार वर्णन कर रहा है, कर्ण के पास बैठे दुर्योधन जब उसके कान पर मुंह रखकर कुछ कहते हुये हंस रहे हैं तब पाण्डवों की नजरें कभी दुष्ट दुःशासन पर गिरती हैं तो कभी धर्मपुत्र युधिष्ठिर पर (अर्थात् वे कर्तव्यकर्म में आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं) ॥१३५॥

दु;शासन— वही हे द्रौपदि ! इत्यादि १३० वां श्लोक पढ़ता है ।

विकर्ण—ओहो ! पाण्डव बड़े ही औचित्यकारी हैं ! देखो—इस राजसभा में पाण्डवों की दृष्टियाँ कौरवकुमार दुःशासन के बल को अर्थात् उसके औद्धत्यपूर्ण

दृग्दृष्टयो नृपतिसंसदि पाण्डवानां
दृष्ट्वा युधिष्ठिरमुखं पुनरानमन्ति ॥ १३६ ॥

(पुनरवलोक्य)

अहो किमपि महारम्भः सुभासदां क्षोभः ।

द्योतच्चूडामणीनां चलनझणझणत्कारिहारच्छटानां
प्रेङ्खोलत्कङ्कणालीकलकलमुखरैर्दोर्भिरुड्डामराणाम् ।
निःश्वासैः साट्टहासं किमिदमिदमिति त्वङ्गितभ्रूलतानाम्
संक्षोभो भूपतीनां विततमपि सभागर्भरन्ध्रं रुणद्धि ॥ १३७ ॥

(पुनरवलोक्य)

अहो कौरवपतेराज्ञा ! अहो तत्र सत्यता महीपालानाम् !!

अस्मिन् महासदसि कौरवपाण्डवीये
क्षोभं गते द्रुपदजा चिकुराञ्चनाभिः ।

वचनों को सुनकर क्रोध से लाल होकर ऊपर चढ़ जाती हैं—पर युधिष्ठिर के मुख को देखकर नीचे हो जाती हैं ॥ १३६ ॥

(फिर देखकर)

ओहो ! सभाभवनस्थित मनुष्यों में बड़ा संक्षोभ हो रहा है । तथाहि—

चमकती चूड़ामणियों वाले, चलने से झनझनाते हुये हारों वाले, हिलते हुए कङ्कणों से शब्दायमान भुजाओं वाले, लम्बी-लम्बी श्वासों से, अट्टहास के सहित वह क्या हो रहा है । इस विचार से भ्रूलताओं को इधर-उधर चलाने वाले राजाओं की गड़बड़ी इस अतिविस्तृत भी सभा-भवन को भरे दे रही है ॥१३७॥

(फिर देखकर)

ओहो ! कौरवपति की आज्ञा में बड़ी शक्ति है । राजाओं में भी दुर्योधन की आज्ञा का पालन में बड़ी सत्यता है, तथाहि—

इस कौरव, पाण्डवों की सभा में जब द्रौपदी के केशाम्बर खींचने से ,क्षोभ उत्पन्न हो गया तब दुर्योधन ने अपनी भौंहें टेढ़ीं करीं और सारे राजा लोग

दुर्योधनेन भ्रुकुटी कुटिलीकृता च
जाताश्च भूमिपतयो लिखिता इवैते ॥ १३८ ॥
(सरभसं युधिष्ठिरमुपसृत्य)

आर्य युधिष्ठिर ! प्रतिष्ठस्व वनवासाय । द्यूतहारितमनुष्ठीयताम् ।
(सर्वे समुत्तिष्ठन्ति)

द्रौपदी—रे ! रे ! दुज्जोहण ! (रे रे ! दुर्योधन !)

एसो से करकड्ढणा परिहवे आमुक्कबन्धक्कमो
ता सच्चं चिअचश्चरीअकसणो केसोच्चओ थाहिइ ।
णक्खग्गङ्कुसकोडिपाडिअमहादुस्सासणोरत्थली—
रत्तुल्लेहि करेहि णिच्चअमिमं भीमो ण जा बन्धइ ॥१३९॥

(एषोऽसौ करकर्षणापरिभवे आमुक्तबन्धक्रमः–
तत्सत्यं चिरचञ्चरीककषणः केशोच्चयस्तिष्ठति ।
नखाग्राङ्कुशकोटिपाटितमहादुःशासनोरःस्थली—
रक्तोल्लेढिकरेण निश्चयमयं भीमेन यद् बध्यते ॥ १३९ ॥)

भीमः—रे रे दुर्योधन ! दोर्दण्डद्वयभीमस्य भीमसेनस्य मम श्रृणु प्रतिज्ञाम् ।

चित्र-लिखित के समान निस्तब्ध शान्त होकर बैठ गये, कोई कान भी नहीं हिलाता ॥ १३८ ॥

(सहसा युधिष्ठिर के पास जाकर)

हे युधिष्ठिर ! तुम वनवास के लिये प्रस्थान कर दो । जूए में हारने पर जो बात निश्चित हो चुकी है वह करो ।

द्रौपदी—अरे ! दुर्योधन !

यह मेरा हाथों से खींचने के कारण जिसका बन्धन छूट गया है ऐसा काले भौंरों के समान काला केशसमूह है । इसको नखों से दुःशासन के उरस्थल को विदारित करने वाले करों वाला भीम स्वयं बाँधेगा ॥ १३९ ॥

भीम—अरे दुर्योधन ! भयङ्कर भुजाओं वाले भीम की भीषण प्रतिज्ञा को सुन ले ।

येनेयं याज्ञसेनी नृपसदसि हठात्केशपाशो गृहीता
यश्चास्याः कोटवीत्वं बत कलयति भो वाससां राशिकारः ।
सोऽहं तेनैव रोषारुणनयनपुटः पाणिनोत्पाटितेन
ते हन्ता ! हन्त ! वक्षस्तटभुवि रटतो दुष्टदुःशासनस्य ॥ १४० ॥

अपि च—रे रे दुर्योधन !

नखक्रकचपाटनं त्रुटितकीकसाद्वक्षसः
सिरासरणिभिर्मृधे रुधिरमुत्फलत्फेनिलम् ।
तदञ्जलिमयं रुषा हृदि निवेश्य दौःशासने
युधिष्ठिरसहोदरः शृणु वृकोदरः पास्यति ॥ १४१ ॥

किञ्च, एकस्मिन्नपराधेऽपि सर्वे सहधर्मचारिणोऽपराद्धारः । ततश्च ।

द्रोणादुपार्जितधनुर्निगमप्रबन्धान्
सर्वानपि स्थितवतो सदसि प्रकाशम् ।
भ्रातॄन् हनिष्यति शतं तव भीमसेनः
काले गदाप्रहरणै रणकर्मशौण्डः ॥ १४२ ॥

जिस हाथ से इस द्रौपदी के केश खींचे थे तथा जिस हाथ ने इसको नंगा करना चाहते हुये कपड़े इकट्ठे किये थे, मैं उस ही हाथ को क्रोध से युद्ध में उखाड़ूंगा तथा दुःशासन के वक्षःस्थल को चीरने के बाद तुझे मारूंगा ॥१४०॥

और भी रे दुर्योधन !

युद्ध में नखरूपी आरे से चीरने के कारण जिसकी हड्डी टूट गई है ऐसे वक्षस्थल की नसों में से निकलते हुये झागदार खून की अञ्जलियों को दुःशासन की छाती से भर-भर कर यह युधिष्ठिर का सहोदर भीम पान करेगा, सुनो ॥ १४१ ॥

तथा—एक के अपराध करने पर भी उसके सब ही साथी अपराधी हैं । अतः—

द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या को पढ़कर पारङ्गत सभास्थित तेरे सब भाइयों को यह भीमसेन युद्ध के समय में घमासान युद्ध करके गदा के प्रहारों से मार डालेगा ।

ततश्च—

दोर्दण्डमण्डलितचण्डगदाप्रहारै-
रामूलतस्तडतडत्त्रुटितोरुसन्धेः ।
दुर्योधनस्य विकटां मुकुटाग्रपीडां
द्रागल्लोठयिष्यति रणे चरणेन भीमः ॥ १४३ ॥

शकुनिः—निर्गच्छत वनवासाय । को हि द्यूतजितानामुद्विजते मौखर्येण ।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

तथा फिर—

यह भीम दोनों भुजाओं से गदा को घुमाकर उसके प्रहार से तेरी (दुर्योधन की) जाँघ जड़ से तोड़कर तेरे विशाल मुकुट को अपने पैर से रण में लुढ़कावेगा ॥ १४३ ॥

शकुनि— तुम सब वनवास के लिए निकल जाओ, द्यूत में हारे हुओं के मुखरतापूर्ण प्रलाप का कौन बुरा माने ।

(सब निकल जाते हैं)

मातृभाषा-समृद्धयर्थं मात्राननहितेप्सया ।
मातृभाषाऽनुवादोऽयं मातृसेवाविधित्सया ॥ १ ॥
रामप्यारी यस्य माता भीमसेनः सुधीः पिता ।
हरिस्तेन समाख्यातो विख्यो विख्यानुभूतले ॥ २ ॥
श्रीराजशेखरकवेः प्रतिभावितान भूतस्यरम्य तव 'भारत नाटकस्य ।
भाषाऽनुवादकरणे प्रथमद्वितीयावङ्कौ परेशकृपयाऽभजतां समाप्तिम् ॥ ३ ॥
बुद्धिदोषाद्द्भ्रमाच्चित्तचाञ्चल्यात्कार्यभूमतः ।
संभाविताऽशुद्धिजालं नालं सत्कोपहेतवे ॥ ४ ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

श्लोकानुक्रमणिका

सुतौ 1/8 पारिषद् 6 अनुचर 6

पितृव्यपुत्रा 6

वैरं 6, 7

कुलाङ्गार 7

भ्रातरौ 6

दुर्बुद्धय 7

भरतपुत्रा 6

सुबुद्धय 7

सुहृत्पुत्रि 1/9

सं०

नाटक-ग्रन्थाः—

१	चन्द्रकलानाटिका । विश्वनाथकविराज कृत । हिन्दी व्याख्यासहित	६–५०
२	चैतन्यचन्द्रोदय । 'ज्ञानप्रभा' हिन्दी व्याख्या सहित	७–००
३	नलचम्पू । 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या सहित	११–००
४	विद्यापरिणय । 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या सहित	४–५०
५	शुक्रसप्तति । 'विनोदिनी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित	१०–००
६	हनुमन्नाटक । 'विभा' हिन्दी व्याख्या सहित	६–५०
७	अमृतोदयनाटक । 'प्रकाश' संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित	५–५०
८	आश्चर्यचूडामणि । शक्तिभद्र विरचित । 'रमा' संस्कृत-हिन्दी व्या०	४–५०
९	चण्डकौशिक । 'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित	४–००
१०	प्रबोधचन्द्रोदय । 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या सहित	३–००
११	नाटकचन्द्रिका । रूपगोस्वामीप्रणीत । 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या	७–५०
१२	नारीजागरणनाटकम् । पं० गोपालशास्त्री विरचित	४–००
१३	पाणिनीयनाटकम् । पं० गोपालशास्त्री विरचित	२–००
१४	प्रभावतीपरिणय । हरिहर विरचित । 'प्रकाश' हि० व्या०	यन्त्रस्थ
१५	विद्धशालभञ्जिका । राजशेखर रचित । 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्या	३–००
१६	हिन्दी के पौराणिक नाटक । डॉ० देवर्षि सनाढ्य	१०–००
१७	अनर्घराघव । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित	८–००
१८	अभिज्ञानशाकुन्तल । किशोरकेलि संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	७–००
१९	उत्तररामचरित । चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका, नोट्स सहित	४–५०
२०	प्रसन्नराघव । चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	४–५०
२१	भासनाटकचक्र । 'प्रबोधिनी' 'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित	२२–००
२२	महावीरचरित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	६–००
२३	मालतीमाधव नाटक । चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	६–००
२४	मालविकाग्निमित्र । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३–५०
२५	मुद्राराक्षस । शशिकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३–५०
२६	मृच्छकटिक । प्रबोधिनी संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	६–००

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी–१